॥ ऊँ श्री गणेशाय नमः॥

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 तथा एफ.वाई.यू.पी के अनुरूप पाठ्यक्रमानुसार

(बी.ए-द्वितीय वर्ष, सेमेस्टर- तृतीय, विषय-संस्कृत, पेपरकोड-A020301T)

शीर्षकः "संस्कृत नाटक एवं व्याकरण"

डॉ.चन्द्र किशोर शास्त्री

सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग,

ब्रह्मावर्त पी.जी.कॉलेज,मन्धना

(सी.एस.जे.एम.विश्वविद्यालय),

कानपुर नगर,उ.प्र।

Programme/Class: Diploma **कार्यक्रम/वर्ग**- डिप्लोमा	**Year:** Second **वर्ष**- द्वितीय	**Semester:** III सेमेस्टर- तृतीय
विषय-संस्कृत		
प्रश्नपत्रकोड- A020301T	**प्रश्नपत्रशीर्षक: संस्कृत नाटक एवं व्याकरण**	

Course outcomes: अधिगमप्रतिफलानि-

- संस्कृत नाट्य साहित्य को सामान्य रूप से समझ सकने में सक्षम होंगे।
- नाटक की पारिभाषिक शब्दावली से सुपरिचित होंगे।
- नाटक में प्रयुक्त रस, छंद एवं अलंकारों का सम्यक् बोध कर सकेंगे।
- संवाद एवं अभिनय कौशल में पारंगत होंगे।
- नवीन पदों के ज्ञान द्वारा उनके शब्दकोश में वृद्धि होगी।
- भारतीय सांस्कृतिक तत्वों एवं मूल्यों को आत्मसात कर, भारतीयता के गर्व बोध से युक्त उत्तम नागरिक बनेंगे।
- व्याकरणपरक शब्दों की सिद्धि प्रक्रिया से परिचित हो सकेंगे।
- व्याकरणशास्त्र के ज्ञानोपार्जन में समुच्चय वाक्य विन्यास की कालक्रमानुसार योजना कर सकेंगे।

Credits: 6	**Core Compulsory**
Max. Marks: 25+75	**Min. Passing Marks:**

Total No. of Lectures-Tutorials-Practical (in hours per week): L-T-P: 6-0-0.

Unit **इकाई**	**Topics** **पाठ्यविषय**	**No. of Lectures** **व्याख्यानसंख्या**
I.	**नाट्य साहित्य परंपरा तथा प्रमुख नाटककार - भास, अश्वघोष, भवभूति, भट्टनारायण, विशाखदत्त**	**12**
II.	**अभिज्ञान शाकुन्तलम् (प्रथम अंक)**	**10**
III.	**अभिज्ञान शाकुन्तलम् (चतुर्थ अंक)**	**10**
IV.	**स्वप्नवासवदत्तम् (प्रथम अंक)**	**13**
	द्वितीय भाग (PART-2)	
V.	**रूपसिद्धि- सामान्य परिचय** **अजन्तप्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)** **पुल्लिंग - राम, हरि, साधु** **सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि** **अजन्तप्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)**	**12**
VI.	**स्त्रीलिंग - रमा, मति** **नपुंसकलिंग - ज्ञान, वारि** **सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि**	**11**
VII.	**हलन्त प्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)** **पुल्लिंग - इदम्, राजन्, तद्, किम्** **सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि**	**11**
VIII.	**हलन्तप्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी)** **स्त्रीलिंग - किम्, इदम्** **नपुंसकलिंग - इदम्, अहन्** **सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि**	**11**

1.नाट्य साहित्य परम्परा तथा पमुख नाटककार

प्रश्न- नाट्य साहित्य परम्परा की समीक्षा/विवेचन कीजए।

उत्तर- नाट्य साहित्य परम्परा:-

भारतीय साहित्य-परम्परा में नाट्य का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। काव्य जहाँ मुख्यतः श्रव्य अथवा पठनीय आनन्द प्रदान करता है, वहीं नाट्य साहित्य, अभिनय, संगीत, नृत्य, संवाद, वेशभूषा, रंग-सज्जा और भावाभिव्यक्ति आदि के समन्वय से दृश्य-काव्य का रूप ग्रहण करता है। इसीलिए संस्कृत नाट्य को केवल साहित्य की एक विधा मानना पर्याप्त नहीं है; वह भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, अभिनय-कला और रंग-परम्परा का समन्वित रूप है।

संस्कृत नाट्य-परम्परा का सैद्धान्तिक आधार मुख्यतः भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र में नाट्य की उत्पत्ति, रंगमण्डप, पात्र, अभिनय, नृत्य, संगीत, रस, भाव, वृत्ति, प्रवृत्ति, सन्धि, नाट्यरचना तथा दर्शक आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस दृष्टि से नाट्यशास्त्र भारतीय नाट्यचिन्तन का आधारभूत ग्रन्थ है।

नाट्य की संकल्पना

'नाट्य' शब्द की व्युत्पत्ति सामान्यतः 'नट्' धातु से मानी जाती है, जिसका सम्बन्ध अभिनय एवं प्रदर्शन से है। नाट्य में जीवन के विविध भावों, वृत्तियों और परिस्थितियों का अनुकरण तथा कलात्मक प्रस्तुतीकरण होता है। भारतीय परम्परा में नाट्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं माना गया। इसमें शिक्षा, उपदेश, लोकमंगल, भावपरिष्कार और आनन्द—इन सभी का समन्वय है। इसीलिए नाट्य लोकजीवन और कलात्मक अनुभूति के बीच सेतु का कार्य करता है।

नाट्य की उत्पत्ति :- परम्परागत एवं ऐतिहासिक दृष्टि

(क) पौराणिक दृष्टि:- भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नाट्य की उत्पत्ति को दैवी रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। देवताओं के आग्रह पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से तत्त्व ग्रहण करके नाट्यवेद की रचना की—

- ऋग्वेद से — पाठ्य
- सामवेद से — गीत
- यजुर्वेद से — अभिनय
- अथर्ववेद से — रस

इस प्रकार नाट्य को सभी वर्गों के लिए उपयोगी पंचमवेद के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। यह कथा ऐतिहासिक उत्पत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण न होकर नाट्य की सर्वसमावेशी प्रकृति एवं सांस्कृतिक महत्ता को व्यक्त करने वाली प्रतीकात्मक परम्परा के रूप में समझी जानी चाहिए।

(ख) ऐतिहासिक दृष्टि:- नाट्य के वास्तविक उद्भव की निश्चित तिथि निर्धारित करना कठिन है। वैदिक साहित्य में संवादात्मक सूक्त, आख्यान, गीत और अभिनय-सदृश तत्त्व मिलते हैं। ऋग्वेद के यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी तथा सरमा-पणि आदि संवादात्मक प्रसंगों को भारतीय नाट्य-चेतना के आरम्भिक संकेतों के रूप में देखा जाता है। बाद में अभिनय, नृत्य, गीत और संवाद के क्रमिक समन्वय से विकसित नाट्य-परम्परा का शास्त्रीय रूप नाट्यशास्त्र में दिखाई देता है।

प्रश्न- नाट्यशास्त्र और संस्कृत नाट्य-परम्परा की समीक्षा/विवेचन कीजए।

उत्तर- नाट्यशास्त्र और संस्कृत नाट्य-परम्परा:-

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र संस्कृत नाट्य परम्परा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधारग्रन्थ है। इसकी रचना-तिथि निश्चित नहीं है; विद्वानों ने इसके निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं को प्राचीन काल में रखा है। आधुनिक विद्वत्-स्रोत सामान्यतः इसके मूल स्वरूप को ईसा-पूर्व उत्तरार्ध से ईस्वी प्रारम्भिक शताब्दियों के व्यापक काल-क्षेत्र में रखते हैं। नाट्यशास्त्र में—

1- रस और भाव

2- अभिनय

3- नाट्यरचना

4- पात्र-विधान

5- रंगमण्डप

6- वेशभूषा

7- संगीत एवं वाद्य

8- नृत्य

8- वृत्तियाँ

9- प्रवृत्तियाँ

10- सन्धियाँ

11- नायक-नायिका

12- दर्शक

आदि का अत्यन्त विस्तृत विवेचन मिलता है। इसीलिए यह केवल नाटक-रचना का ग्रन्थ न होकर भारतीय रंगमंच का व्यापक शास्त्र है।

प्रश्न- संस्कृत नाट्य का प्राण किस सिद्धान्त को कहा जाता है ?

उत्तर- रस-सिद्धान्त : संस्कृत नाट्य का प्राण:-

भारतीय नाट्यचिन्तन की सर्वाधिक मौलिक देन रस-सिद्धान्त है। भरतमुनि का प्रसिद्ध सूत्र है— **"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"**। नाटक का चरम प्रयोजन दर्शक के भीतर रसात्मक अनुभूति का उदय माना गया है। स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव के कलात्मक समन्वय से रस की अनुभूति होती है। यही कारण है कि संस्कृत नाटक में केवल कथानक की गति या घटनाओं का कौतूहल ही प्रधान नहीं है; भावानुभूति और रसास्वाद उसके कलात्मक मूल्य के प्रमुख आधार हैं।

प्रश्न- संस्कृत नाट्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर-संस्कृत नाटक की प्रमुख विशेषताएँ:- संस्कृत नाट्य परम्परा ने एक विशिष्ट नाट्यशिल्प विकसित किया। उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं—

१.नान्दी:-प्रायःनाटक का आरम्भ नान्दी से होता है। इसका उद्देश्य मंगलाचरण एवं नाटक की शुभभूमिका तैयार करना है।

२. प्रस्तावना:- नान्दी के पश्चात् सूत्रधार आदि के माध्यम से प्रस्तावना आती है। इसमें नाटक, नाटककार तथा प्रसंग की भूमिका निर्मित होती है।

३. संस्कृत और प्राकृत का प्रयोग:- संस्कृत नाटकों में पात्रानुकूल भाषिक विविधता मिलती है। उच्चवर्गीय अथवा विशिष्ट पात्रों के लिए संस्कृत तथा अनेक अन्य पात्रों के लिए विभिन्न प्राकृतों का प्रयोग नाट्यपरम्परा की उल्लेखनीय विशेषता है।

४. गद्य-पद्य का समन्वय:- संस्कृत नाटक में संवाद प्रायः गद्य में तथा भावोन्मेष,वर्णन,आत्माभिव्यक्ति आदि के प्रसंग में पद्य का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार नाटक चम्पू-सदृश मिश्रित अभिव्यक्ति ग्रहण करता है।

५.अभिनय की प्रधानता:- नाट्य साहित्य मूलतःअभिनेय काव्य है। आंगिक,वाचिक,आहार्य और सात्त्विक—इन चार प्रकार के अभिनय के माध्यम से नाटकीय भावों को दृश्य रूप मिलता है।

६. सुखान्त प्रवृत्ति:- संस्कृत नाट्यपरम्परा में पूर्ण करुणान्त या विनाशान्त नाटक अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं। नाटकीय संघर्ष के पश्चात् सामान्यतः समाधान, पुनर्मिलन अथवा कल्याणकारी परिणति की ओर प्रवृत्ति दिखाई देती है।

७. रूपक-परम्परा:- संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाट्यरूपों का अत्यन्त व्यवस्थित वर्गीकरण मिलता है। दशरूपक की परम्परा में प्रमुख रूप हैं—

1. नाटक
2. प्रकरण
3. भाण
4. प्रहसन
5. डिम
6. व्यायोग
7. समवकार
8. वीथी
9. ईहामृग
10. अंक

इनके अतिरिक्त उपरूपकों की भी समृद्ध परम्परा है। धनञ्जय का दशरूपक और विश्वनाथ का साहित्यदर्पण संस्कृत नाट्यशास्त्रीय परम्परा के उत्तरवर्ती महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। आधुनिक विश्वविद्यालयीय संस्कृत पाठ्यक्रम भी नाट्यशास्त्र, दशरूपक और साहित्यदर्पण को नाट्य-अध्ययन के महत्त्वपूर्ण स्रोतों के रूप में निर्दिष्ट करते हैं।

प्रश्न- संस्कृत नाट्य साहित्य का विकास की समीक्षा कीजिए-

उत्तर- ***संस्कृत नाट्य साहित्य का विकास***:-

(क) भास:- *संस्कृत नाट्य परम्परा के प्राचीन और अत्यन्त प्रभावशाली नाटककारों में भास का स्थान अग्रगण्य है। आधुनिक काल में तिरुवनन्तपुरम् से प्राप्त तेरह नाटकों के आधार पर भास की नाट्यप्रतिभा का व्यापक पुनर्मूल्यांकन हुआ। कालिदास ने भी अपने नाटक मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में भास का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। भास की प्रमुख रचनाएँ हैं—*

1- स्वप्नवासवदत्तम्

2- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्

3- प्रतिमानाटकम्

4- अभिषेकनाटकम्

5- ऊरुभङ्गम्

6- कर्णभारम्

7- मध्यमव्यायोगः

8- दूतवाक्यम्

9- दूतघटोत्कचम्

10- पञ्चरात्रम्

11- बालचरितम्

12- अविमारकम्

13- दारिद्रचारुदत्तम्

भास की विशेषता है कि उन्होंने रामायण और महाभारत की कथाओं को नाटकीय दृष्टि से पुनर्गठित किया तथा महाकाव्यीय पात्रों में मानवीय संवेदनाओं को उभारा। विशेषतः ऊरुभङ्गम् और कर्णभारम् में महाभारत के पात्रों के मनोवैज्ञानिक एवं करुण पक्ष का सशक्त चित्रण मिलता है।

(ख) कालिदास:- *संस्कृत नाट्यपरम्परा का सर्वोच्च कलात्मक उत्कर्ष महाकवि कालिदास के नाटकों में दिखाई देता है। उनकी तीन प्रसिद्ध नाट्यकृतियाँ हैं—*

1. मालविकाग्निमित्रम्

2. विक्रमोर्वशीयम्

3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

कालिदास की नाट्यकला में प्रकृति, प्रेम, मानवीय संवेदना, राजकीय जीवन और आध्यात्मिकता का अत्यन्त कलात्मक समन्वय मिलता है। विशेषतः अभिज्ञानशाकुन्तलम् संस्कृत नाट्य साहित्य की विश्वविख्यात कृति है। इसका प्रभाव भारतीय सीमाओं से बाहर भी पहुँचा और इसके अनुवादों ने यूरोपीय साहित्यिक जगत में विशेष ध्यान आकर्षित किया। कालिदास की प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1- प्रकृति और मानव का सामंजस्य

2- प्रेम की उदात्त अभिव्यक्ति

3- चरित्रों की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता

4- संस्कृत एवं प्राकृत का स्वाभाविक प्रयोग

5- पद्य की लालित्यपूर्ण भाषा

6- रसात्मक परिपक्वता

7- नाटकीय संरचना में संतुलन

(ग) शूद्रक और सामाजिक नाट्य:- *शूद्रक का मृच्छकटिकम् संस्कृत नाट्य परम्परा में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह राजदरबार या पौराणिक आख्यान तक सीमित न रहकर नगरजीवन, सामान्य मनुष्य, प्रेम, अर्थ, राजनीति और सामाजिक विषमता को नाटकीय विषय बनाता है। चारुदत्त और वसन्तसेना की कथा के माध्यम से इसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन के अनेक स्तर उद्घाटित होते हैं। इस कारण मृच्छकटिकम् को संस्कृत नाट्य परम्परा के अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक और यथार्थपरक नाटकों में गिना जाता है।*

(घ) विशाखदत्त:- *विशाखदत्त का मुद्राराक्षसम् संस्कृत नाट्य साहित्य में राजनीतिक नाटक की उत्कृष्ट परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें—*

1- राजनीति

2- कूटनीति

3- राज्यसत्ता

4- षड्यन्त्र

5- राजकीय नीति

6- चाणक्य की बुद्धिमत्ता का प्रभावशाली चित्रण है।

जहाँ कालिदास के नाटक में प्रेम और प्रकृति का सौन्दर्य प्रमुख है, वहीं विशाखदत्त के यहाँ राजनीतिक संघर्ष और बुद्धि-कौशल नाटकीय तनाव उत्पन्न करते हैं। यही विविधता संस्कृत नाट्य साहित्य की व्यापकता को प्रमाणित करती है।

(ङ) हर्ष:- *सम्राट हर्ष से सम्बद्ध तीन प्रमुख नाटक हैं—*

1- रत्नावली

2- प्रियदर्शिका

3- नागानन्द

इनमें राजकीय जीवन, प्रेम, करुणा तथा धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना के विविध रूप मिलते हैं। विशेषतः नागानन्द में बौद्ध करुणा और त्याग की भावना का प्रभाव उल्लेखनीय है।

(च)भवभूति:- *संस्कृत नाट्य परम्परा में भवभूति का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी तीन प्रमुख नाट्यकृतियाँ हैं—*

1. महावीरचरितम्

2. मालतीमाधवम्

3. उत्तररामचरितम्

भवभूति की नाट्यकला में करुणा, गम्भीरता, मानवीय संघर्ष और मनोवैज्ञानिक संवेदना का विशेष महत्त्व है। विशेषतः उत्तररामचरितम् में राम के जीवन के उत्तरकाण्डीय प्रसंग को लेकर कर्तव्य, प्रेम, त्याग और राजधर्म के बीच उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण हुआ है। करुण रस की अभिव्यक्ति में भवभूति की प्रतिभा असाधारण है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में उनकी तुलना प्रायः कालिदास के साथ की जाती है, यद्यपि दोनों की नाट्य-दृष्टि में पर्याप्त अन्तर है।

(छ)अन्य प्रमुख नाटककारः- संस्कृत नाट्य परम्परा का विकास केवल उपर्युक्त नाटककारों तक सीमित नहीं है। आगे चलकर अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाकार हुए—

1- भट्टनारायण — वेणीसंहारम्

2- राजशेखर — बालरामायणम्, कर्पूरमञ्जरी

3- शक्तिभद्र — आश्चर्यचूडामणि

4- मुरारि — अनर्घराघवम्

5- दिङ्नाग — कुन्दमाला

6- जयदेव — प्रसन्नराघवम्

प्रश्न- संस्कृत नाट्य साहित्य का आलोचनात्मक मूल्याँकन कीजिए-

उत्तर- **संस्कृत नाट्य साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन**:-

संस्कृत नाट्य परम्परा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समन्वयकारी प्रकृति है। इसमें साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय और दृश्य-कला का ऐसा समन्वय है जो इसे मात्र लिखित साहित्य से ऊपर उठाकर पूर्ण रंग-कला बना देता है। नाट्यशास्त्र में रंगमंच की वास्तु-व्यवस्था से लेकर अभिनय और दर्शक तक का व्यवस्थित विवेचन इस व्यापकता को प्रमाणित करता है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है रसप्रधानता। पाश्चात्य नाट्य-परम्परा में कथानक-संघर्ष और त्रासदी को जो महत्त्व मिला, संस्कृत नाट्य में भाव और रसास्वाद को केन्द्र में रखा गया। फलतः संस्कृत नाटक का लक्ष्य केवल घटनाओं का प्रदर्शन न होकर दर्शक को एक विशिष्ट सौन्दर्यानुभूति प्रदान करना है।

तीसरी विशेषता है विषय-विविधता। संस्कृत नाटक केवल पौराणिक आख्यानों तक सीमित नहीं है। भास के महाकाव्यीय नाटक, कालिदास का प्रेम एवं प्रकृति-केन्द्रित नाट्य, शूद्रक का सामाजिक जीवन, विशाखदत्त का राजनीतिक संघर्ष और भवभूति की करुण एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि इसके विषयगत विस्तार को प्रमाणित करते हैं।

प्रश्न- संस्कृत नाटक की सीमाओं पर प्रकाश डालिए -

उत्तर- **संस्कृत नाटक की सीमाएँ : एक समीक्षात्मक दृष्टिः-**

विश्वविद्यालयीय अध्ययन में केवल प्रशंसा पर्याप्त नहीं; परम्परा की सीमाओं का विवेकपूर्ण परीक्षण भी आवश्यक है। संस्कृत नाट्य की कुछ प्रमुख सीमाएँ इस प्रकार देखी जा सकती हैं—

1.अभिजात्य प्रवृत्ति — अनेक संस्कृत नाटक राजदरबार, कुलीन समाज और विशिष्ट वर्गों के जीवन के इर्द-गिर्द केन्द्रित हैं।

2.नाट्यशास्त्रीय रूढ़ियाँ — *शास्त्रीय नियमों का अत्यधिक आग्रह कभी-कभी स्वाभाविक नाटकीयता को सीमित कर सकता है।*

3.नाट्य-प्रयोग की समस्या — *अनेक संस्कृत नाटक आज साहित्य के रूप में अधिक पढ़े जाते हैं और जीवित रंगमंचीय परम्परा से उनका सम्बन्ध सीमित दिखाई देता है।*

4.भाषिक दूरी — *संस्कृत के जनभाषा न रहने के कारण कालान्तर में संस्कृत नाटक का व्यापक लोक-प्रसार कम हुआ और क्षेत्रीय भाषाओं के नाट्यरूप अधिक प्रभावशाली बने।*

फिर भी इन सीमाओं को संस्कृत नाट्य की समग्र उपलब्धियों के संदर्भ में देखना चाहिए। मध्यकाल में संस्कृत के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं और लोक-रंगपरम्पराओं का विकास हुआ तथा नाट्यशास्त्रीय तत्त्व अनेक लोक एवं धार्मिक रंगरूपों में रूपान्तरित होते रहे।

प्रश्न- संस्कृत नाट्य की उत्तरजीविता और आधुनिक प्रासंगिकता स्पष्ट कीजिए-

उत्तर- ***संस्कृत नाट्य की उत्तरजीविता और आधुनिक प्रासंगिकता:-***

*संस्कृत नाट्य साहित्य केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं है। कुटियाट्टम् जैसी जीवित रंगपरम्पराएँ संस्कृत नाट्य और अभिनय-परम्परा की निरन्तरता का महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। नाट्यशास्त्रीय अभिनय,भावाभिव्यक्ति और रंगपरम्परा ने भारतीय प्रदर्शन-कला की अनेक धाराओं को प्रभावित किया है। आधुनिक समय में संस्कृत नाटकों के मंचन, अनुवाद, पुनर्पाठ और नये नाट्य-प्रयोगों के माध्यम से यह परम्परा पुनः अध्ययन और प्रयोग का विषय बनी हुई है। संस्कृत नाट्य के आधुनिक अध्ययन में इसलिए केवल ग्रन्थ-पाठ नहीं, बल्कि **performance,** दर्शक, रंगमंच, अभिनय और सांस्कृतिक संदर्भ को भी समान महत्त्व दिया जाना चाहिए।*

प्रश्न- संस्कृत नाट्य साहित्य भारतीय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की एक अत्यन्त समृद्ध उपलब्धि है,विवेचन कीजिए-

उत्तर- संस्कृत नाट्य साहित्य की भारतीय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना:-

संस्कृत नाट्य साहित्य भारतीय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की एक अत्यन्त समृद्ध उपलब्धि है। इसकी यात्रा वैदिक संवादात्मक परम्पराओं से आरम्भ होकर नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के सुव्यवस्थित रूप, भास की नाटकीय प्रयोगशीलता, कालिदास के काव्यात्मक उत्कर्ष, शूद्रक के सामाजिक यथार्थ, विशाखदत्त की राजनीतिक दृष्टि, हर्ष की सांस्कृतिक चेतना तथा भवभूति की करुण एवं मनोवैज्ञानिक संवेदना तक विकसित होती है।

इस परम्परा की वास्तविक शक्ति उसके समन्वय में निहित है—साहित्य और अभिनय का, भाव और विचार का, लोक और शास्त्र का, मनोरंजन और लोकशिक्षा का तथा सौन्दर्य और जीवन-मूल्यों का। अतः संस्कृत नाट्य साहित्य को केवल प्राचीन नाटकों का संग्रह मानना उसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा। यह भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, रंगचिन्तन और सांस्कृतिक मानस की दीर्घकालीन विकास-यात्रा का साक्षी है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने नाट्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर रसात्मक अनुभूति और जीवन की कलात्मक पुनर्सृष्टि का माध्यम बनाया।

इसीलिए संस्कृत नाट्य-परम्परा आज भी विश्वविद्यालयीय अध्ययन, भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, तुलनात्मक साहित्य, रंगमंच-अध्ययन तथा भारतीय ज्ञान-परम्परा के विमर्श में समान रूप से प्रासंगिक बनी हुई है। विश्वविद्यालयीय परीक्षा के लिए अत्यन्त संक्षिप्त निष्कर्ष है कि- नाट्य साहित्य परम्परा की विकास-रेखा को इस सूत्र में याद किया जा सकता है।

प्रश्न- प्रमुख नाटककारों का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए-

उत्तर- ***1.भास : जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व***

१. भूमिका:- संस्कृत नाट्य-साहित्य के इतिहास में भास का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे उन प्राचीन नाटककारों में हैं, जिनकी ख्याति कालिदास से पूर्व ही स्थापित हो चुकी थी। कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में भास का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। बाणभट्ट तथा परवर्ती साहित्यकारों के संकेत भी भास की प्राचीन प्रतिष्ठा की पुष्टि करते हैं।

भास की विशेष महत्ता इस तथ्य से भी स्पष्ट होती है कि लगभग विस्मृति में चले गए उनके नाम से सम्बद्ध नाटकों का एक बड़ा समूह 1910 के आसपास महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री को त्रिवेन्द्रम् में प्राप्त हुआ। उन्होंने तेरह नाटकों को भास की रचनाएँ माना और उनका प्रकाशन ***Trivandrum Sanskrit Series*** में कराया।

२. जीवनवृत्त:- भास के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री अत्यल्प है। उनका जन्मस्थान, जन्मतिथि, माता-पिता, शिक्षा तथा राजाश्रय आदि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। स्वयं भास ने भी अपनी रचनाओं में अपने जीवन के विषय में पर्याप्त परिचय नहीं दिया। इसलिए उनके जीवनवृत्त का निर्माण मुख्यतः आन्तरिक एवं बाह्य साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर किया जाता है। उनका काल निश्चित नहीं है, किन्तु उन्हें सामान्यतः कालिदास से पूर्ववर्ती माना जाता है। भारत सरकार के संस्कृत सम्बन्धी आधिकारिक स्रोत में भी भास को कालिदास का पूर्ववर्ती नाटककार मानते हुए उनका समय लगभग दूसरी-तीसरी शती ईस्वी के आसपास रखने की सम्भावना व्यक्त की गई है। भास के जीवन की अपेक्षा उनकी रचनाएँ ही उनके व्यक्तित्व और युग की सबसे महत्त्वपूर्ण साक्षी हैं। अतः भास का अध्ययन करते समय उनके ऐतिहासिक जीवन से अधिक उनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर ध्यान देना उपयुक्त है।

३. भास का व्यक्तित्व:- भास का साहित्यिक व्यक्तित्व अनेक विशिष्ट गुणों से सम्पन्न है-

(क) मौलिक एवं साहसी नाट्य-दृष्टि:- भास ने रामायण और महाभारत जैसे प्रसिद्ध आख्यानों को केवल पुनःकथित नहीं किया, बल्कि उनमें नाटकीय परिवर्तन और मौलिक कल्पना का समावेश किया। वे पूर्वप्रचलित कथा को नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में समर्थ थे।

(ख) मानवीय दृष्टि:- उनके पात्र केवल पौराणिक या महाकाव्यीय प्रतीक नहीं हैं; उनमें मानवीय दुर्बलताएँ, भावनाएँ और अन्तर्द्वन्द्व दिखाई देते हैं। कर्णभारम् में कर्ण की मानसिक व्यथा और ऊरुभङ्गम् में दुर्योधन के करुण मानवीय पक्ष का चित्रण इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ग) नाटकीयता के प्रति सजगता:- भास की सबसे बड़ी विशेषता उनकी रंगमंचीय चेतना है। वे दृश्य-निर्माण, संवाद, संघर्ष और आकस्मिक घटनाओं के माध्यम से नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इस दृष्टि से उनका नाटक केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि मंच पर प्रस्तुत किए जाने योग्य भी है।

(घ) रूढ़ियों से मुक्त प्रयोगशीलता:- भास ने नाट्यशास्त्रीय परम्परा का ज्ञान रखते हुए भी उसके बाह्य नियमों का यांत्रिक अनुकरण नहीं किया। उनकी रचनाओं में अनेक ऐसे प्रयोग हैं जो नाटकीय प्रभाव को प्राथमिकता देते हैं। इसी कारण उनका नाट्य व्यक्तित्व परम्परानिष्ठ होते हुए भी प्रयोगशील दिखाई देता है।

४. भास का कृतित्व:- भास के नाम से वर्तमान में तेरह नाटक प्रसिद्ध हैं। ये सभी रचनाएँ 1910 के आसपास त्रिवेन्द्रम् से प्राप्त पाण्डुलिपियों के आधार पर सामने आईं। प्रमुख रचनाएँ हैं-

क्रम	कृति	प्रमुख आधार
1.	प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्	उदयन-कथा
2.	स्वप्नवासवदत्तम्	उदयन-कथा
3.	चारुदत्तम्	सामाजिक आख्यान
4.	पञ्चरात्रम्	महाभारत
5.	मध्यमव्यायोगः	महाभारत
6.	दूतवाक्यम्	महाभारत
7.	दूतघटोत्कचम्	महाभारत
8.	कर्णभारम्	महाभारत
9.	ऊरुभङ्गम्	महाभारत
10.	प्रतिमानाटकम्	रामायण
11.	अभिषेकनाटकम्	रामायण
12.	बालचरितम्	भागवत-कृष्णकथा
13.	अविमारकम्	आख्यानपरम्परा

इन तेरह नाटकों का पारम्परिक रूप से भास के नाम से सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त मूल्यांकन

स्वप्नवासवदत्तम्:- भास की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनाओं में स्वप्नवासवदत्तम् का स्थान अग्रणी है। इसमें राजा उदयन, वासवदत्ता और पद्मावती के माध्यम से प्रेम, त्याग, राजनीति और कूटनीति का सुन्दर समन्वय मिलता है। इसकी नाटकीय योजना और चरित्र-निर्माण ने इसे संस्कृत नाट्य-साहित्य की अत्यन्त लोकप्रिय कृतियों में प्रतिष्ठित किया। परवर्ती साहित्यिक परम्परा में भी इसे भास की श्रेष्ठ कृति माना गया है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्:- इसमें उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण की राजनीतिक बुद्धिमत्ता, स्वामिभक्ति और योजनाशक्ति का प्रभावशाली चित्रण है। यह भास की राजनीतिक एवं कूटनीतिक नाट्य-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है।

कर्णभारम्:- महाभारत के कर्ण को केन्द्र में रखकर रचित यह नाटक कर्ण के दानवीर, आत्मसम्मानी तथा करुण व्यक्तित्व को उभारता है। अल्प आकार में भी अत्यन्त तीव्र भावात्मक प्रभाव उत्पन्न करना इसकी विशेषता है।

ऊरुभङ्गम्:- दुर्योधन को केवल खलनायक के रूप में न दिखाकर उसके मानवीय और करुण पक्ष को प्रस्तुत करना भास की मौलिक दृष्टि का प्रमाण है। इस नाटक में करुण रस और मनोवैज्ञानिक चित्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

मध्यमव्यायोग:- इसमें भीम और घटोत्कच आदि पात्रों के माध्यम से पारिवारिक सम्बन्धों तथा वीरता के साथ मानवीय संवेदना का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

भास की नाट्यकला की प्रमुख विशेषताएँ

१. कथावस्तु में मौलिक परिवर्तन:- भास महाकाव्यीय कथाओं को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करते। वे कथा में परिवर्तन करके उसे नाटकीय आवश्यकता के अनुरूप ढालते हैं।

२. नाटकीय संक्षिप्तता:- उनकी अनेक रचनाएँ आकार में अपेक्षाकृत छोटी हैं, फिर भी उनमें घटनाओं का तीव्र विकास और प्रभावशाली चरमबिन्दु दिखाई देता है।

३. चरित्रों का मानवीकरण:- भास की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक है—महाकाव्यीय पात्रों को मानवीय संवेदनाओं से युक्त करना। कर्ण और दुर्योधन इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

४. संवाद-वैशिष्ट्य:- उनके संवाद अपेक्षाकृत सीधे, गतिशील और परिस्थितिनुकूल हैं। संवाद कथा को आगे बढ़ाने के साथ पात्र के मनोभाव को भी व्यक्त करते हैं।

५. करुण एवं वीर भाव की प्रभावशीलता:- भास विशेष रूप से वीरता, त्याग, करुणा और मानवीय संघर्ष के चित्रण में सफल दिखाई देते हैं।

६. रंगमंचीय प्रभाव:- उनके नाटकों में दृश्यात्मकता और अभिनय-सामर्थ्य उल्लेखनीय है। घटना को केवल वर्णित करने के स्थान पर उसे मंच पर घटित करने की प्रवृत्ति उनके नाट्य-कौशल को विशिष्ट बनाती है।

भास- समस्या : एक आवश्यक आलोचनात्मक टिप्पणी

1910 के आसपास गणपति शास्त्री ने इन तेरह नाटकों को भास की रचनाएँ माना। उनके पक्ष में प्रमुख आधार थे—भाषा एवं शैली की समानता, नाटकों की संरचनात्मक समानता, स्वप्नवासवदत्तम् का नाम तथा प्राचीन साहित्य में भास की नाट्य-प्रतिष्ठा। किन्तु कुछ विद्वानों ने इन सभी नाटकों की एक ही लेखक द्वारा रचना पर प्रश्न उठाए हैं। विशेषतः यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि प्राप्त पाण्डुलिपियों में नाटककार के नाम का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इसलिए आधुनिक शोध में 'भास के तेरह नाटक' कहना सुविधाजनक और प्रचलित है, किन्तु इनके लेखकत्व का प्रश्न पूरी तरह निर्विवाद नहीं माना जाता।

इसलिए आलोचनात्मक दृष्टि से उचित निष्कर्ष यह है कि भास का ऐतिहासिक अस्तित्व और उनकी प्राचीन ख्याति पर्याप्त रूप से प्रमाणित है, परन्तु त्रिवेन्द्रम् से प्राप्त सभी तेरह नाटकों के लेखकत्व का प्रश्न अभी भी विद्वत्-विमर्श का विषय है।

उपसंहार

भास संस्कृत नाट्यपरम्परा के ऐसे नाटककार हैं जिनमें परम्परा और प्रयोग, महाकाव्य और रंगमंच, वीरता और करुणा, राजनीति और मानवीय संवेदना का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने प्रसिद्ध आख्यानों को नयी नाटकीय

दृष्टि दी और महाभारत-रामायण के पात्रों को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे कथा के पुनर्कथनकर्ता मात्र नहीं, बल्कि उसके सर्जनात्मक पुनर्निर्माता हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में नाटकीय योजना, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में राजनीतिक बुद्धिमत्ता, कर्णभारम् में करुण मानवीयता और ऊरुभङ्गम् में चरित्र का मानवीकरण—इन सबके माध्यम से उनकी नाट्यप्रतिभा का बहुआयामी स्वरूप सामने आता है।

अतः संस्कृत नाट्य-साहित्य के विकासक्रम में भास का महत्त्व केवल इस कारण नहीं है कि वे कालिदास से पूर्व के नाटककार हैं, बल्कि इसलिए भी है कि उन्होंने भारतीय नाटक को सशक्त कथात्मकता, रंगमंचीयता और मानवीय संवेदना प्रदान करने वाली विशिष्ट दिशा दी। उनकी कृतियाँ संस्कृत नाट्यपरम्परा के विकास को समझने के लिए आज भी अनिवार्य स्रोत हैंपरीक्षा में निष्कर्ष की एक प्रभावशाली पंक्ति:

"भास की नाट्यप्रतिभा का वैशिष्ट्य इस बात में है कि उन्होंने महाकाव्यीय आख्यानों को मात्र पुनः प्रस्तुत न करके उन्हें मानवीय संवेदना, नाटकीय तनाव और रंगमंचीय प्रभाव से सम्पन्न स्वतंत्र कलाकृतियों में रूपान्तरित किया।"

2.अश्वघोष: जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

१. भूमिका:- संस्कृत साहित्य के आरम्भिक विकासक्रम में अश्वघोष का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे केवल बौद्ध धर्म के समर्थक आचार्य ही नहीं, बल्कि संस्कृत के आरम्भिक महाकाव्यकार और नाटककार भी थे। उनके काव्य में बौद्ध जीवन-दर्शन और संस्कृत की उच्च काव्य-परम्परा का ऐसा समन्वय मिलता है, जिसने आगे के संस्कृत काव्य के विकास को महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान किया। बुद्धचरित और सौन्दरनन्द को संस्कृत के आरम्भिक उपलब्ध महाकाव्यात्मक काव्यों में गिना जाता है।

२. जीवनवृत्त:- अश्वघोष के जीवन के सम्बन्ध में निश्चित ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम उपलब्ध है। उनके जन्मस्थान, जन्मतिथि तथा जीवन की अनेक घटनाओं के विषय में परम्परागत एवं किंवदन्तीपरक विवरण मिलते हैं, अतः उन्हें निर्विवाद ऐतिहासिक तथ्य मानना उचित नहीं है। उन्हें सामान्यतः ईसा की प्रथम-द्वितीय शती का कवि माना जाता है और उनका सम्बन्ध उत्तर भारत से माना जाता है। कुछ परम्पराएँ उन्हें साकेत का निवासी बताती हैं। सौन्दरनन्द के अष्टादश सर्ग की पुष्पिका में उन्हें आर्यसुवर्णाक्षीपुत्र, साकेतक भिक्षु, आचार्य भदन्त अश्वघोष कहा गया है। यह उनके सम्बन्ध में उपलब्ध महत्त्वपूर्ण आन्तरिक प्रमाणों में से एक है।

अश्वघोष के जीवन का सबसे प्रसिद्ध पक्ष उनका बौद्ध धर्म से सम्बन्ध है। परम्परा उन्हें प्रारम्भ में ब्राह्मण विद्वान और बाद में बौद्ध आचार्य मानती है। उनका सम्बन्ध कुषाण सम्राट कनिष्क से भी जोड़ा जाता है; परन्तु इस सम्बन्ध में उपलब्ध वृत्तान्तों में ऐतिहासिक तथ्य और परम्परा दोनों मिश्रित हैं। अतः इतना कहना अधिक सुरक्षित है कि वे उत्तर भारत में बौद्ध धर्म के प्रभावशाली साहित्यिक प्रवक्ताओं में थे और उनका काल कनिष्क-युग के आसपास माना जाता है।

३. अश्वघोष का व्यक्तित्व:- अश्वघोष का व्यक्तित्व कवि, दार्शनिक, धर्मप्रचारक और नाटककार—इन सभी रूपों का समन्वित रूप है-

(क) कवि और धर्मद्रष्टा: - उनके लिए काव्य केवल सौन्दर्याभिव्यक्ति का माध्यम नहीं था। वे काव्य के माध्यम से बुद्ध के जीवन और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को शिक्षित एवं संस्कारित समाज तक पहुँचाना चाहते थे। बुद्धचरित और सौन्दरनन्द दोनों में यह उद्देश्य स्पष्ट दिखाई देता है।

(ख) समन्वयवादी दृष्टि: - उनकी रचनाओं में एक ओर बौद्ध दर्शन और वैराग्य है, तो दूसरी ओर संस्कृत काव्य की परिष्कृत परम्परा, प्रकृति-वर्णन, प्रेम, सौन्दर्य और मानवीय मनोविज्ञान भी है। इसीलिए अश्वघोष का काव्य धर्म और काव्य, उपदेश और सौन्दर्य के बीच संतुलन स्थापित करता है।

(ग) प्रभावशाली प्रचारक: -अश्वघोष की साहित्यिक प्रतिभा का एक उद्देश्य बौद्ध विचारों को प्रभावशाली एवं जनग्राह्य बनाना था। उनके यहाँ दार्शनिक सिद्धान्त नीरस शास्त्रीय प्रतिपादन के रूप में न आकर कथा, चरित्र और काव्यात्मक अनुभूति के माध्यम से सामने आते हैं। यही उनकी मौलिकता है।

(घ) मानवीय मनोविज्ञानी: - विशेषतः सौन्दरनन्द में नन्द के सांसारिक प्रेम से वैराग्य और आध्यात्मिक जागरण तक की यात्रा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित हुई है। इस दृष्टि से अश्वघोष केवल धर्मोपदेशक नहीं, बल्कि मानव-मन के सूक्ष्म निरीक्षक भी हैं।

४. अश्वघोष का कृतित्व: - अश्वघोष के नाम से अनेक ग्रन्थों का उल्लेख परम्पराओं में मिलता है, किन्तु आधुनिक शोध की दृष्टि से मुख्यतः तीन कृतियों को उनसे दृढ़ता से सम्बद्ध माना जाता है—

1. बुद्धचरितम्
2. सौन्दरनन्दम्
3. शारिपुत्रप्रकरणम्

बुद्धचरितम्:- बुद्धचरितम् अश्वघोष की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। यह गौतम बुद्ध के जीवन को केन्द्र में रखकर रचित महाकाव्य है। इसमें बुद्ध के जन्म, बाल्यजीवन, वैराग्य, महाभिनिष्क्रमण, तपस्या, सम्बोधि तथा धर्मप्रचार आदि का काव्यात्मक वर्णन मिलता है। संस्कृत में इसका मूल पाठ पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है; शेष अंशों की पूर्ति के लिए चीनी और तिब्बती अनुवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण हैं। इसकी विशेषता यह है कि बुद्ध के जीवन को केवल धार्मिक आख्यान के रूप में न प्रस्तुत करके अश्वघोष ने उसे महाकाव्यात्मक गरिमा और काव्य-सौन्दर्य प्रदान किया। प्रकृति-वर्णन, नगर-वर्णन, राजकीय वैभव, मानवीय मोह और वैराग्य आदि का चित्रण इसकी कलात्मकता को बढ़ाता है।

सौन्दरनन्दम्:- सौन्दरनन्दम् अठारह सर्गों का महाकाव्य है। इसका केन्द्र बुद्ध के सौतेले भाई नन्द और उनकी पत्नी सुन्दरी हैं। नन्द सांसारिक प्रेम में आसक्त है; बुद्ध के प्रभाव से उसका जीवन धीरे-धीरे वैराग्य एवं आध्यात्मिक साधना की ओर अग्रसर होता है। इस कृति में अश्वघोष ने काम से निर्वेद, आसक्ति से वैराग्य और सांसारिक जीवन से आध्यात्मिक जीवन की यात्रा को अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसीलिए सौन्दरनन्द को केवल धार्मिक काव्य न मानकर मनोवैज्ञानिक एवं उपदेशात्मक महाकाव्य के रूप में भी देखा जा सकता है।

शारिपुत्रप्रकरणम्:- अश्वघोष के नाटककार रूप का प्रमाण शारिपुत्रप्रकरणम् है। यह नौ अंकों का प्रकरण था, जिसका विषय शारिपुत्र और मौद्गल्यायन का बुद्ध के शिष्यत्व को स्वीकार करना है। इसकी मूल कृति पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है; मध्य एशिया से प्राप्त पाण्डुलिपि-अंशों के आधार पर इसके अस्तित्व और अश्वघोष के लेखकत्व का महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्राप्त हुआ है। इस कृति का विशेष महत्त्व इसलिए है कि इससे यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष केवल महाकाव्यकार ही नहीं, संस्कृत नाटक के आरम्भिक विकास में भी सक्रिय रचनाकार थे।

अश्वघोष की साहित्यिक विशेषताएँ

१. धर्म और काव्य का समन्वय:- उनकी रचनाओं में बौद्ध दर्शन को काव्य-सौन्दर्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यही उनकी सबसे बड़ी साहित्यिक उपलब्धि है।

२. प्रकृति-वर्णन:- प्रकृति उनके यहाँ केवल सजावटी तत्त्व नहीं है; वह पात्रों की मनःस्थिति और भावों की अभिव्यक्ति में सहायक बनती है।

३. मनोवैज्ञानिक चित्रण:- नन्द की मानसिक यात्रा और सिद्धार्थ के वैराग्य में मानवीय मन के संघर्ष का सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

४. संस्कृत काव्यशैली का परिष्कार:- अश्वघोष ने बौद्ध विषयवस्तु को संस्कृत की प्रतिष्ठित काव्यभाषा में प्रस्तुत किया। इस प्रकार उन्होंने बौद्ध साहित्य को शास्त्रीय संस्कृत काव्य की मुख्यधारा से जोड़ा। बुद्धचरित और सौन्दरनन्द को संस्कृत के प्रारम्भिक उपलब्ध काव्यों में गिना जाना इसी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

५. उपदेश और सौन्दर्य का संतुलन:- उनका उद्देश्य धर्मोपदेश अवश्य है, परन्तु वे काव्य को केवल उपदेश का माध्यम नहीं बनने देते। कथा, प्रकृति, प्रेम, वैराग्य और चरित्र-चित्रण के द्वारा वे उपदेश को सौन्दर्यानुभूति में रूपान्तरित करते हैं।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

अश्वघोष का वास्तविक महत्त्व बौद्ध कवि होने मात्र में नहीं, बल्कि इस बात में है कि उन्होंने बौद्ध विचारधारा को संस्कृत की उच्च साहित्यिक परम्परा के भीतर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने धर्म को काव्य का विषय बनाया, परन्तु काव्यत्व को समाप्त नहीं होने दिया। उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं उपदेशात्मकता काव्य की स्वाभाविक गति पर प्रभाव डालती है; फिर भी उनकी काव्यात्मक प्रतिभा, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और संस्कृत भाषा पर अधिकार इन सीमाओं को काफी हद तक संतुलित कर देते हैं। इस दृष्टि से अश्वघोष को बौद्ध धर्म के प्रचारक और संस्कृत काव्य के प्रारम्भिक महत्त्वपूर्ण शिल्पी—दोनों रूपों में देखना अधिक उचित है।

उपसंहार

अश्वघोष भारतीय साहित्य के उस संक्रमण-बिन्दु के कवि हैं जहाँ धर्म और दर्शन साहित्य की मुख्यधारा से सृजनात्मक रूप से जुड़ते हैं। बुद्धचरित में बुद्ध के जीवन को महाकाव्यात्मक गरिमा, सौन्दरनन्द में मानवीय आसक्ति और वैराग्य को मनोवैज्ञानिक गहराई तथा शारिपुत्रप्रकरण में बौद्ध धर्म को नाटकीय अभिव्यक्ति प्राप्त होती है।

अतः संस्कृत साहित्य के इतिहास में अश्वघोष का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। वे बौद्ध चेतना को संस्कृत काव्य की कलात्मक अभिव्यक्ति देने वाले अग्रणी कवि हैं। उनकी साहित्यिक उपलब्धि का सार इस एक वाक्य में कहा जा सकता है— *"अश्वघोष ने धर्म को काव्य का विषय बनाया और काव्य को धर्मोपदेश का प्रभावी माध्यम; इसी समन्वय में उनकी मौलिक साहित्यिक प्रतिभा का वास्तविक उत्कर्ष निहित है।"* परीक्षा में ध्यान रखने योग्य तथ्य: अश्वघोष के विषय में *"निश्चित रूप से कनिष्क के राजकवि थे"* जैसे वाक्य लिखने के बजाय *"परम्परा में कनिष्क से उनका सम्बन्ध माना जाता है"* लिखना अधिक प्रमाणिक है। इसी प्रकार बुद्धचरित के संस्कृत पाठ की अपूर्णता और शारिपुत्रप्रकरण के खण्डित रूप को उल्लेख करना उत्तर को विश्वविद्यालय-स्तर का अधिक विश्वसनीय बनाता है।

3.भवभूति: जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

१. भूमिका:- संस्कृत नाट्य-साहित्य के इतिहास में महाकवि भवभूति का स्थान कालिदास के पश्चात् अत्यन्त गौरवपूर्ण है। यदि कालिदास के नाटकों में प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य का लालित्य प्रमुख है, तो भवभूति के नाटकों में करुणा, गम्भीरता, त्याग, धर्म, कर्तव्य और मानवीय अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता दिखाई देती है। इसी कारण उन्हें संस्कृत नाट्य-परम्परा का अत्यन्त गम्भीर एवं संवेदनशील नाटककार माना जाता है। उनकी तीन प्रसिद्ध नाट्यकृतियाँ हैं—महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम्।

२. जीवनवृत्त:- भवभूति के जीवन के विषय में सामग्री सीमित है, किन्तु उनके नाटकों की प्रस्तावनाएँ उनके वंश और पारिवारिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। उनके अनुसार वे दक्षिणापथ के पद्मपुर के निवासी तथा काश्यपगोत्रीय, तैत्तिरीय शाखा के कृष्णयजुर्वेदी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जातुकर्णी था और पितामह भट्टगोपाल थे। उनके कुल की वैदिक विद्वत्ता तथा यज्ञपरम्परा का भी उल्लेख मिलता है।

भवभूति का वास्तविक नाम श्रीकण्ठ था या 'भवभूति' ही उनका नाम था—इस विषय में परम्परागत मतभेद मिलता है। उनके नाटक मालतीमाधव में 'श्रीकण्ठपदलाञ्छन' पद मिलता है; अतः श्रीकण्ठ और भवभूति के सम्बन्ध में विभिन्न व्याख्याएँ मिलती हैं। इस तथ्य को निर्विवाद रूप में प्रस्तुत करने के बजाय इसे मतभेद के रूप में स्वीकार करना अधिक उचित है। उनका काल सामान्यतः आठवीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध के आसपास माना जाता है। परवर्ती परम्परा में उनका सम्बन्ध कन्नौज के यशोवर्मा से जोड़ा गया है; किन्तु उनके आश्रय और जीवन-यात्रा के सभी विवरण समान रूप से ऐतिहासिक रूप से सुनिश्चित नहीं हैं।

३. भवभूति का व्यक्तित्व:- भवभूति का व्यक्तित्व विद्वत्ता, गम्भीरता, दार्शनिक चिन्तन और मानवीय संवेदना का अद्भुत समन्वय है।

(क) गम्भीर एवं चिन्तनशील व्यक्तित्व: - उनके नाटकों में जीवन के गहन प्रश्न—कर्तव्य, धर्म, प्रेम, त्याग, नियति और लोकापवाद—बार-बार सामने आते हैं। उनके पात्र केवल घटनाओं के वाहक नहीं, बल्कि गहरे मानसिक संघर्ष से गुजरने वाले मनुष्य हैं।

(ख) करुणा के अप्रतिम कलाकार: - भवभूति की सबसे बड़ी साहित्यिक शक्ति करुण भाव की अभिव्यक्ति है। उत्तररामचरितम् में राम और सीता के वियोग को जिस मनोवैज्ञानिक गहराई से प्रस्तुत किया गया है, वह संस्कृत नाट्य-साहित्य में विशिष्ट है।

(ग) मानवीय दृष्टि: - भवभूति ने पौराणिक पात्रों को अलौकिक आदर्शों के रूप में ही नहीं, बल्कि सुख-दुःख, प्रेम-वियोग और कर्तव्य-संघर्ष से युक्त मानवीय चरित्रों के रूप में चित्रित किया। राम का राजधर्म और व्यक्तिगत प्रेम के बीच संघर्ष इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

(घ) शास्त्र और काव्य का समन्वय: -उनकी रचनाओं में वेद, दर्शन, धर्म और शास्त्रीय ज्ञान का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही उनकी काव्य-प्रतिभा इन गम्भीर विषयों को भावपूर्ण नाटकीय अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

४. भवभूति का कृतित्व: - भवभूति की तीन नाट्यकृतियाँ सर्वमान्य रूप से प्रसिद्ध हैं—

महावीरचरितम्: - यह सात अंकों का नाटक है। इसमें राम के जीवन की प्रमुख घटनाओं का चित्रण किया गया है। राम के बाल्यकाल से लेकर रावण-वध और राज्याभिषेक तक की कथा को नाटकीय रूप प्रदान किया गया है। इसमें भवभूति ने राम के वीर, धर्मनिष्ठ और आदर्श चरित्र को विशेष महत्त्व दिया है।

मालतीमाधवम्: - यह दस अंकों का प्रकरण है। इसका कथानक मालती और माधव के प्रेम पर आधारित है। प्रेमकथा के साथ इसमें राजनीतिक परिस्थितियाँ, मित्रता, त्याग, साहस तथा रोमांचकारी घटनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। इसकी विशेषता यह है कि भवभूति ने प्रेम के साथ भय, करुणा और अद्भुतता जैसे विविध भावों का भी प्रभावशाली संयोजन किया है।

उत्तररामचरितम्: - यह भवभूति की सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति मानी जाती है। इसमें राम के राज्याभिषेक के बाद की कथा, विशेषतः सीता-परित्याग, लव-कुश और अन्ततः राम-सीता के पुनर्मिलन को आधार बनाया गया है। यहाँ भवभूति का मुख्य उद्देश्य केवल रामकथा का पुनर्कथन नहीं, बल्कि राजधर्म और व्यक्तिगत प्रेम के संघर्ष को मानवीय धरातल पर प्रस्तुत करना है। इसी कारण राम यहाँ केवल आदर्श राजा नहीं, बल्कि पीड़ित पति और संवेदनशील मनुष्य भी हैं।

भवभूति की नाट्यकला की प्रमुख विशेषताएँ

(१) करुण रस की प्रधानता: - भवभूति की सबसे बड़ी उपलब्धि करुण रस का अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। उत्तररामचरितम् इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

(२) मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण: - राम, सीता, मालती, माधव आदि पात्रों के अन्तर्मन का सूक्ष्म चित्रण उनकी नाट्यकला को विशिष्ट बनाता है।

(३) गम्भीर एवं प्रौढ़ भाषा: - भवभूति की भाषा संस्कृत की अत्यन्त परिष्कृत, गम्भीर और प्रभावशाली शैली का उदाहरण है। उनके यहाँ दीर्घ समास, गहन अर्थवत्ता तथा ओजस्वी पदावली का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। इसी कारण उनका काव्य कभी-कभी अपेक्षाकृत दुरूह भी प्रतीत होता है। परवर्ती आलोचकों ने भी उनकी भाषा की गम्भीरता और पाठ की कठिनता पर ध्यान दिया है।

(४) भाव और विचार का समन्वय: - उनके नाटकों में भावुकता के साथ दार्शनिक एवं नैतिक चिन्तन का सुन्दर समन्वय है। प्रेम उनके यहाँ केवल व्यक्तिगत अनुभूति नहीं, बल्कि त्याग और कर्तव्य से जुड़ा हुआ जीवन-मूल्य बन जाता है।

(५) प्रकृति और वातावरण: - भवभूति के यहाँ प्रकृति पात्रों की मानसिक स्थिति की सहचरी बनती है। विशेषतः वियोग एवं करुण प्रसंगों में प्रकृति-वर्णन भावों को अधिक तीव्र करता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

भवभूति की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने रामकथा और प्रेमकथा को गहरे मानवीय मनोविज्ञान से जोड़ा। महावीरचरित में वीरता, मालतीमाधव में प्रेम और उत्तररामचरित में करुणा—इन तीनों के माध्यम से उनकी नाट्यप्रतिभा का क्रमिक विकास दिखाई देता है। उनकी सीमा यह है कि कहीं-कहीं दीर्घ समास, गम्भीर दार्शनिक विवेचन और अपेक्षाकृत जटिल भाषा नाटकीय प्रवाह को धीमा कर देते हैं। फिर भी जहाँ वे मानवीय वेदना और करुणा का

चित्रण करते हैं, वहाँ उनका प्रभाव अत्यन्त सशक्त है। इसी कारण उन्हें संस्कृत नाट्यपरम्परा में करुणानुभूति का अद्वितीय कलाकार माना जाता है।

उपसंहार

भवभूति संस्कृत नाट्य-साहित्य के ऐसे महाकवि हैं, जिनके यहाँ काव्य का सौन्दर्य जीवन की गम्भीर अनुभूति से जुड़ जाता है। वे केवल रामकथा या प्रेमकथा के नाटककार नहीं, बल्कि मानवीय मन के सूक्ष्म अध्येता हैं। उनके पात्रों में धर्म और प्रेम, कर्तव्य और भावना तथा आदर्श और यथार्थ के बीच चलने वाला संघर्ष अत्यन्त प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुआ है। विशेषतः उत्तररामचरितम् के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया कि महान् नायक भी मानवीय वेदना से मुक्त नहीं होते। यही भवभूति की नाट्यप्रतिभा का वैशिष्ट्य है।

"यदि कालिदास संस्कृत नाट्य को माधुर्य और लालित्य के शिखर तक ले जाते हैं, तो भवभूति उसे गम्भीरता, करुणा और मानवीय अन्तर्द्वन्द्व की गहराई प्रदान करते हैं।"

इसी कारण संस्कृत नाट्य-साहित्य की परम्परा में भवभूति का स्थान कालिदास के पश्चात् सर्वाधिक प्रभावशाली नाटककारों में सुरक्षित है।विशेष तथ्य-सावधानी: भवभूति के सम्बन्ध में "निश्चित रूप से यशोवर्मा के राजकवि थे" या "श्रीकण्ठ ही उनका निश्चित वास्तविक नाम था" जैसे कथन बिना मतभेद बताए नहीं लिखने चाहिए। उनके अपने नाटकों से प्राप्त वंश-सम्बन्धी विवरण अपेक्षाकृत अधिक ठोस आधार प्रदान करते हैं।

4. भट्टनारायण: जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. **जीवनवृत्त**: - संस्कृत के प्रमुख नाटककारों में भट्टनारायण का विशिष्ट स्थान है। उनके व्यक्तिगत जीवन के संबंध में प्रामाणिक सामग्री अत्यल्प है। उनके जीवनकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है, तथापि सामान्यतः उन्हें ईसा की आठवीं शती के आसपास का नाटककार माना जाता है। उनके जीवन के संबंध में उपलब्ध परम्पराओं से उन्हें कान्यकुब्ज से सम्बद्ध तथा शाण्डिल्य-परम्परा का ब्राह्मण माना गया है, यद्यपि इन विवरणों में ऐतिहासिक और पारम्परिक सामग्री का मिश्रण है। उनकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार उनका एकमात्र उपलब्ध नाटक 'वेणीसंहार' है। नाटक की प्रस्तावना में उन्हें 'कविमृगराज' की उपाधि से सम्बोधित किया गया है, जो उनकी कवित्व-प्रतिभा के प्रति तत्कालीन सम्मान का संकेत देती है।

2. **व्यक्तित्व**: -भट्टनारायण का व्यक्तित्व वीरता, धर्मनिष्ठा, गम्भीरता और काव्य-कौशल का समन्वय है। वे महाभारत की कथा को केवल पुनः प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसके भीतर निहित प्रतिशोध, स्वाभिमान, धर्म-संघर्ष और मानवीय भावनाओं को नाटकीय रूप प्रदान करते हैं। उनकी विशेषता यह है कि वे पात्रों के माध्यम से तीव्र भावनात्मक और वीरतापूर्ण वातावरण निर्मित करते हैं। विशेषतः भीम और द्रौपदी के चरित्रों में प्रतिज्ञा, अपमान, क्रोध और प्रतिशोध की तीव्रता प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त होती है। नाटक में वीर रस की प्रधानता है, साथ ही करुण, रौद्र तथा भयानक आदि रसों का भी यथास्थान प्रयोग मिलता है। भट्टनारायण का व्यक्तित्व मूलतः गम्भीर और शास्त्रीय है। वे नाट्यशास्त्रीय मर्यादाओं के सजग प्रयोगकर्ता हैं और संस्कृत की समासप्रधान, प्रभावशाली तथा ओजस्वी भाषा के माध्यम से नाटकीय गरिमा को बढ़ाते हैं।

3. कृतित्व: - भट्टनारायण की एकमात्र प्रसिद्ध रचना 'वेणीसंहार' है। यह छः अंकों का नाटक है और इसका कथानक मुख्यतः महाभारत से लिया गया है। इसमें द्रौपदी के अपमान के पश्चात् पाण्डवों द्वारा लिए गए प्रतिशोध तथा महाभारत-युद्ध की घटनाओं को नाटकीय रूप दिया गया है। नाटक का प्रधान उद्देश्य द्रौपदी की वेणी के पुनः बाँधे जाने की प्रतिज्ञा की पूर्ति के माध्यम से अन्याय के प्रतिकार और प्रतिज्ञा-पालन को प्रतिष्ठित करना है।

'वेणीसंहार' की प्रमुख विशेषताएँ

1- वीर रस की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति।

2- महाभारत के प्रसिद्ध प्रसंगों का नाटकीय रूपान्तरण।

3- भीम, द्रौपदी, दुर्योधन, कर्ण और अश्वत्थामा आदि पात्रों का सशक्त चित्रण।

4- ओज, गांभीर्य और समास-बहुल संस्कृत भाषा।

5- नाट्यशास्त्रीय तत्वों तथा अलंकारों का प्रभावी प्रयोग।

4. साहित्यिक मूल्याँकन: - भट्टनारायण की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने महाभारत के युद्धप्रधान और प्रतिशोधात्मक प्रसंग को वीरप्रधान नाटकीय संरचना प्रदान की। उनके नाटक में काव्यात्मकता और नाटकीयता का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। यद्यपि कुछ आलोचकों ने कथानक के कुछ स्थलों पर घटनाओं की असंगति तथा नाटकीय गति की शिथिलता की ओर संकेत किया है, फिर भी पात्र-चित्रण, भाषा की ओजस्विता और वीर-भाव की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के कारण 'वेणीसंहार' संस्कृत नाट्य-साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बना हुआ है।

निष्कर्षतः, भट्टनारायण संस्कृत नाट्यपरम्परा के ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने महाभारत के वीरतापूर्ण और संघर्षमय संसार को मंचीय रूप प्रदान किया। यदि भास ने महाभारतीय पात्रों को मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया, तो भट्टनारायण ने उसी परम्परा को वीरता, प्रतिज्ञा और प्रतिशोध की तीव्रता से समृद्ध किया। 'वेणीसंहार' उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति होते हुए भी उन्हें संस्कृत के प्रमुख नाटककारों की पंक्ति में प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है

5. विशाखदत्त : जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.जीवनवृत्त: - संस्कृत नाट्य-साहित्य में विशाखदत्त का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके जीवन के संबंध में निश्चित ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम उपलब्ध है। उनके काल को लेकर विद्वानों में मतभेद है; तथापि उन्हें सामान्यतः गुप्तोत्तर काल से सम्बद्ध माना जाता है। उनके काल-निर्धारण के लिए मुद्राराक्षस की प्रस्तावना और भरतवाक्य आदि प्रमुख आधार हैं। मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में नाटककार स्वयं को सामन्त वटेश्वरदत्त का पौत्र तथा महाराज भास्करदत्त का पुत्र बताता है। इससे इतना स्पष्ट होता है कि वे सम्भवतः किसी प्रतिष्ठित एवं प्रशासनिक-राजकीय परिवेश से सम्बद्ध थे।

2. व्यक्तित्व:- विशाखदत्त का व्यक्तित्व संस्कृत के अन्य अनेक कवि-नाटककारों से कुछ भिन्न दिखाई देता है। उनका मुख्य आकर्षण राजनीतिक सूझ-बूझ, इतिहास-बोध, कूटनीतिक दृष्टि और यथार्थपरक चरित्र-चित्रण है। वे केवल श्रृंगार अथवा भावुकता के कवि नहीं, बल्कि राजनीति और राज्य-व्यवस्था की जटिलताओं के सजग निरीक्षक हैं। उनके नाटक में चाणक्य की राजनीतिक प्रतिभा, राक्षस की स्वामिभक्ति, चन्द्रगुप्त की राजनीतिक उन्नति तथा नन्द-सत्ता के पतन को अत्यन्त नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से चाणक्य और राक्षस के बीच चलने वाली बुद्धि, नीति और कूटनीति की प्रतिस्पर्धा विशाखदत्त की मौलिक नाट्य-दृष्टि को प्रकट करती है। मुद्राराक्षस को संस्कृत

की विशिष्ट राजनीतिक/ऐतिहासिक नाट्य-कृति माना जाता है। उनकी भाषा में ओज, गांभीर्य और अर्थगौरव है। कथानक को आगे बढ़ाने में संवादों की विशेष भूमिका है। इसीलिए उनकी नाट्य-प्रतिभा मुख्यतः घटनाओं की गति, संघर्ष और संवाद-कौशल में दिखाई देती है।

***3. कृतित्व**: - विशाखदत्त की सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं उपलब्ध कृति 'मुद्राराक्षस' है। यह सात अंकों का राजनीतिक नाटक है, जिसका कथानक नन्दवंश के पतन और चन्द्रगुप्त मौर्य के मगध-सिंहासन पर आरूढ़ होने की पृष्ठभूमि पर आधारित है। चाणक्य की राजनीतिक योजना तथा नन्दों के अमात्य राक्षस को चन्द्रगुप्त के पक्ष में लाना नाटक की प्रमुख कथा है। इस नाटक की प्रमुख विशेषताएँ हैं—*

1- राजनीतिक एवं ऐतिहासिक कथावस्तु।

2- चाणक्य और राक्षस जैसे अत्यन्त प्रभावशाली चरित्रों का निर्माण।

3- कूटनीति, राज्यनीति और सत्ता-संघर्ष का यथार्थ चित्रण।

4- घटनाप्रधान एवं संघर्षमय नाटकीय संरचना।

5- ओजस्वी, गम्भीर तथा अर्थगौरवपूर्ण भाषा।

6- संस्कृत नाट्य की परम्परागत रूढ़ियों से हटकर राजनीतिक यथार्थ को नाट्य-विषय बनाना।

विशाखदत्त की दूसरी कृति के रूप में 'देवीचन्द्रगुप्तम्' का उल्लेख मिलता है, परन्तु वह पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है; उसके अंश और उद्धरण बाद के ग्रन्थों में मिलते हैं। अतः उनके कृतित्व का मूल्यांकन मुख्यतः मुद्राराक्षस के आधार पर ही किया जाता है।

***4. साहित्यिक मूल्याँकन**: - विशाखदत्त संस्कृत नाट्यपरम्परा में राजनीतिक नाटक के सर्वाधिक समर्थ प्रतिनिधि हैं। उनकी मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने नाटक को केवल प्रेम, राजदरबार या पौराणिक आख्यानों तक सीमित न रखकर राजनीति, कूटनीति और सत्ता-संघर्ष को उसका केन्द्र बनाया। मुद्राराक्षस में इतिहास, राजनीति और नाटकीयता का ऐसा समन्वय मिलता है जो संस्कृत साहित्य में विरल है। उनका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यथार्थपरक नाट्य-दृष्टि है। चाणक्य की दूरदर्शिता और राक्षस की स्वामिभक्ति के माध्यम से वे यह दिखाते हैं कि राजनीति केवल शक्ति का नहीं,बल्कि बुद्धि,नीति,धैर्य और रणनीति का भी क्षेत्र है।*

निष्कर्षतः, विशाखदत्त संस्कृत नाट्य-साहित्य के ऐसे समर्थ नाटककार हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास और राजनीति को नाटकीय अभिव्यक्ति प्रदान की। यदि कालिदास संस्कृत नाटक को सौन्दर्य और माधुर्य प्रदान करते हैं, तो विशाखदत्त उसे राजनीति, यथार्थ और कूटनीतिक बुद्धि की तीव्रता प्रदान करते हैं। 'मुद्राराक्षस' उनकी इसी विशिष्ट प्रतिभा का सशक्त प्रमाण है।

*6. **कालिदास: जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व***

*1. **जीवनवृत्त**: - संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि कालिदास का स्थान सर्वोच्च और सार्वकालिक है। उनके जन्मस्थान, माता-पिता तथा जीवन की अनेक घटनाओं के विषय में निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। उनके काल को लेकर भी मतभेद है; भारतीय परम्परा उन्हें विक्रमादित्य के आश्रित कवि के रूप में स्मरण करती है,*

जबकि आधुनिक विद्वानों ने उनके काल के विषय में विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। अतः कालिदास के जीवनवृत्त का पुनर्निर्माण मुख्यतः उनकी रचनाओं तथा परवर्ती साहित्यिक परम्परा के आधार पर ही किया जाता है।

2. **व्यक्तित्व**: - कालिदास का व्यक्तित्व प्रकृति-सौन्दर्य, मानवीय संवेदना, प्रेम, धर्म, संस्कृति और जीवन-दर्शन के अद्भुत समन्वय का परिचायक है। वे प्रकृति के केवल चित्रकार नहीं, बल्कि उसके मानवीकरण के अद्वितीय कलाकार हैं। उनके यहाँ प्रकृति और मानव-हृदय परस्पर सम्बद्ध दिखाई देते हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता उपमा, कल्पना और भाव-सौन्दर्य का स्वाभाविक समन्वय है। उनके पात्र आदर्श होते हुए भी मानवीय भावनाओं से सम्पन्न हैं। प्रेम, विरह, करुणा, त्याग और कर्तव्य जैसे भावों की अत्यन्त सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनके व्यक्तित्व की गहरी संवेदनशीलता को प्रकट करती है। उनकी भाषा सरल, मधुर, प्रसादपूर्ण और कलात्मक है। वैदर्भी रीति की कोमलता, अर्थगौरव तथा अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग उनकी शैली को विशिष्ट बनाता है। इसीलिए कालिदास को संस्कृत काव्य-परम्परा में सौन्दर्य और माधुर्य का अप्रतिम कलाकार माना जाता है। कालिदास के काव्य में प्रकृति, सौन्दर्य, दर्शन, धर्म और संस्कृति पर व्यापक अध्ययन हुए हैं, जो उनके बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रमाणित करते हैं।

3. **कृतित्व**: - कालिदास की सात कृतियाँ प्रामाणिक रूप से प्रसिद्ध हैं—दो महाकाव्य, दो खण्डकाव्य तथा तीन नाटक।

(क) महाकाव्य

1. **रघुवंशम्** — रघुवंशी राजाओं के चरित्र और आदर्श राजधर्म का भव्य आख्यान।
2. **कुमारसम्भवम्** — शिव-पार्वती के प्रेम, विवाह और कुमार कार्त्तिकेय के जन्म की कथा।

(ख) खण्डकाव्य

1. **मेघदूतम्** — विरही यक्ष द्वारा मेघ के माध्यम से अपनी प्रिया के लिए भेजे गए सन्देश का अत्यन्त मार्मिक काव्य।
2. **ऋतुसंहारः** — छः ऋतुओं के प्राकृतिक एवं मानवीय सौन्दर्य का मनोहारी चित्रण।

(ग) नाटक

1. **मालविकाग्निमित्रम्** — राजा अग्निमित्र और मालविका के प्रेम पर आधारित नाटक।
2. **विक्रमोर्वशीयम्** — पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम की कथा।
3. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** — दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन की कथा; यह कालिदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध नाट्यकृति है और संस्कृत नाट्य-साहित्य की महानतम उपलब्धियों में गिनी जाती है।

4. **साहित्यिक मूल्यांकन**: - कालिदास की मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने प्रकृति और मानव-जीवन, सौन्दर्य और भावना, परम्परा और मौलिक कल्पना को एकाकार कर दिया। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति और जीवन-मूल्यों का अत्यन्त कलात्मक रूप मिलता है। नाटककार के रूप में वे चरित्र-चित्रण, संवाद, रस-निष्पत्ति और नाटकीय संरचना के अद्वितीय कलाकार हैं; कवि के रूप में उनकी उपमा, प्रकृति-चित्रण और भाव-सौन्दर्य अनुपम है। निष्कर्षतः, कालिदास केवल संस्कृत के महान कवि नहीं, बल्कि भारतीय काव्य-चेतना के विश्वस्तरीय प्रतिनिधि हैं। यदि भास ने संस्कृत नाटक को नाटकीय शक्ति, भवभूति ने गम्भीरता और करुणा तथा विशाखदत्त ने राजनीतिक यथार्थ प्रदान किया,

तो कालिदास ने उसे सौन्दर्य, माधुर्य और मानवीय संवेदना की चरम ऊँचाई प्रदान की। इसी कारण वे संस्कृत साहित्य में 'महाकवि' के रूप में सर्वाधिक गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं।

2.अभिज्ञानशाकुन्तलम्: नाटक

प्रश्न- 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कीजिए-

उत्तर- 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का संक्षिप्त परिचय

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' संस्कृत के महान कवि एवं नाटककार महाकवि कालिदास की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृतियों में से एक है। इसे संस्कृत साहित्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध और विश्वविख्यात नाटक माना जाता है। इसकी कथा का मूल आधार महाभारत के आदिपर्व में वर्णित दुष्यन्त-शकुन्तला आख्यान है, जिसे कालिदास ने अपनी मौलिक कल्पना, प्रकृति-चित्रण, प्रेमभावना तथा नाटकीय कौशल से अत्यन्त विकसित एवं कलात्मक रूप प्रदान किया है।

१. रचना एवं नामकरण: - इस नाटक का नाम 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' है। 'अभिज्ञान' का अर्थ है—पहचान का चिह्न। नाटक में अंगूठी ही वह अभिज्ञान है जिसके माध्यम से राजा दुष्यन्त को शकुन्तला की पुनः स्मृति प्राप्त होती है। इसी कारण नाटक का नाम 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' सार्थक है।

२. कथावस्तु: - नाटक की मुख्य कथा राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम पर आधारित है। आखेट करते हुए दुष्यन्त कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचता है और वहाँ शकुन्तला से प्रेम करता है। दोनों का गान्धर्व विवाह होता है। दुष्यन्त के चले जाने के बाद महर्षि दुर्वासा के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है। शकुन्तला राजसभा में पहुँचती है, परन्तु राजा उसे पहचान नहीं पाता। बाद में अंगूठी मिलने पर दुष्यन्त को सब कुछ स्मरण हो जाता है। अन्ततः दोनों का पुनर्मिलन होता है और उनका पुत्र भरत भी उनके साथ होता है।

३. अंक-विभाजन: - यह नाटक सात अंकों में विभक्त है—

अंक	प्रमुख घटना
प्रथम अंक	दुष्यन्त का शकुन्तला से प्रथम दर्शन एवं प्रेम का आरम्भ
द्वितीय अंक	दुष्यन्त के मन में शकुन्तला के प्रति प्रेम की वृद्धि
तृतीय अंक	प्रेम की अभिव्यक्ति एवं गान्धर्व विवाह
चतुर्थ अंक	दुर्वासा का शाप और शकुन्तला का पति के घर प्रस्थान
पञ्चम अंक	राजसभा में दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला को न पहचानना
षष्ठ अंक	अंगूठी की प्राप्ति, दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति और पश्चात्ताप
सप्तम अंक	मरीचि के आश्रम में दुष्यन्त-शकुन्तला का पुनर्मिलन एवं भरत का दर्शन

४. प्रमुख रस एवं भाव: - नाटक का अंगी रस शृङ्गार है। इसके साथ करुण, वीर, अद्भुत और शान्त रस का भी सुन्दर समन्वय मिलता है। संयोग और वियोग—दोनों प्रकार के शृङ्गार का अत्यन्त मार्मिक चित्रण कालिदास ने किया है।

५. प्रकृति-चित्रण: -'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की सबसे बड़ी विशेषताओं में प्रकृति और मानव-जीवन का अद्भुत सामंजस्य है। आश्रम का वातावरण, वृक्ष-लताएँ, मृग, पक्षी, ऋतु और वन-सौन्दर्य शकुन्तला के भाव-जगत के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। प्रकृति यहाँ केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कथानक और भावों की सक्रिय सहचरी बन जाती है।

६. नाट्यकला: - कालिदास ने इसमें प्रस्तावना, पूर्वरंग, संवाद, स्वगत-कथन, प्रवेश, आकाशभाषित तथा नाटकीय संयोग-वियोग आदि का अत्यन्त कलात्मक प्रयोग किया है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी विशेष कुशलता दिखाई देती है। दुष्यन्त वीर, प्रेमी और पश्चात्तापशील राजा के रूप में तथा शकुन्तला कोमल, प्रेममयी, त्यागशील और गरिमामयी नायिका के रूप में सामने आती है।

७. भाषा-शैली:- नाटक की भाषा सरल, मधुर, प्रसादपूर्ण और भावानुकूल है। संस्कृत की काव्यात्मक गरिमा तथा प्राकृत की स्वाभाविकता का सुन्दर समन्वय मिलता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के साथ कालिदास का प्रसिद्ध उपमा-कौशल विशेष रूप से दिखाई देता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' प्रेम, प्रकृति, कर्तव्य, विस्मृति, पश्चात्ताप और पुनर्मिलन की अत्यन्त कलात्मक कथा है। कालिदास ने मानवीय प्रेम को प्रकृति की कोमलता और भारतीय जीवन-मूल्यों से जोड़कर इसे सार्वकालिक एवं सार्वभौम बना दिया है। कथावस्तु, रस, प्रकृति-चित्रण, चरित्र-चित्रण, भाषा और नाटकीय शिल्प—सभी दृष्टियों से यह संस्कृत नाट्य-साहित्य की अनुपम कृति है।

प्रश्न-. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का अंकानुसार सारांश प्रस्तुत कीजिए-

उत्तर- अभिज्ञानशाकुन्तलम्: अंकानुसार सारांश

महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' सात अंकों में विभक्त प्रसिद्ध संस्कृत नाटक है। इसकी कथा का मूल आधार महाभारत का शकुन्तलोपाख्यान है, किन्तु कालिदास ने अपनी मौलिक कल्पना से इसमें प्रेम, शाप, विस्मृति, अभिज्ञान, वियोग और पुनर्मिलन का अत्यन्त कलात्मक संयोजन किया है।

1. **प्रथम अंक — आश्रम-प्रवेश**: - नाटक के आरम्भ में नान्दी और प्रस्तावना के पश्चात् राजा दुष्यन्त मृगया करते हुए कण्व के आश्रम में पहुँचते हैं। आश्रम की शान्त और पवित्र मर्यादा के कारण वे मृग का वध नहीं करते। वहीं उन्हें शकुन्तला, उसकी सखियों अनसूया और प्रियंवदा के साथ दिखाई देती है। शकुन्तला के सौन्दर्य और सरलता से दुष्यन्त प्रभावित होते हैं। भ्रमर से पीड़ित शकुन्तला की सहायता करने के बहाने दोनों के बीच प्रथम परिचय होता है। इस अंक में प्रेम के बीज का अंकुरण होता है।

2. **द्वितीय अंक — प्रेम की अभिव्यक्ति**: - दुष्यन्त शकुन्तला के प्रेम में आकृष्ट होकर कण्वाश्रम में ही ठहर जाते हैं। विदूषक माधव्य के साथ उनकी बातचीत से राजा की प्रेम-विह्वलता तथा हास्यपूर्ण स्थिति प्रकट होती है। आश्रम के ऋषि राजा से यज्ञ की रक्षा का अनुरोध करते हैं। दुष्यन्त राजधर्म और प्रेम के बीच स्थित दिखाई देते हैं और आश्रम की रक्षा के लिए रुकने का निर्णय लेते हैं। इस अंक में दुष्यन्त के प्रेम की तीव्रता क्रमशः बढ़ती है।

*3. **तृतीय अंक — प्रेम और गान्धर्व-विवाह**: - शकुन्तला भी दुष्यन्त के प्रेम में अनुरक्त हो जाती है। सखियों के माध्यम से दोनों की प्रेम-भावना स्पष्ट होती है। अन्ततः दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह सम्पन्न होता है। दुष्यन्त शकुन्तला को अपने प्रेम की स्मृति के रूप में राजमुद्रिका प्रदान करता है और शीघ्र ही उसे राजमहल ले जाने का आश्वासन देता है। इस प्रकार प्रथम तीन अंकों में प्रेम का उदय, विकास और परिणय पूर्ण होता है।*

*4. **चतुर्थ अंक — शकुन्तला की विदाई**: - दुष्यन्त राजकार्यवश हस्तिनापुर लौट जाते हैं। पति-विरह में निमग्न शकुन्तला एक दिन आश्रम में आए दुर्वासा ऋषि का यथोचित सत्कार नहीं कर पाती। क्रोधित दुर्वासा उसे शाप देते हैं कि जिसके ध्यान में वह इतनी लीन है, वह उसे भूल जाएगा। सखियों की प्रार्थना पर शाप में यह शर्त जुड़ती है कि किसी अभिज्ञान-चिह्न को दिखाने पर दुष्यन्त को स्मृति लौट आएगी। कण्व के लौटने पर उन्हें शकुन्तला के विवाह का ज्ञान होता है और वे उसे पति के घर भेजने की तैयारी करते हैं। आश्रम से शकुन्तला की विदाई का प्रसंग अत्यन्त करुण और मार्मिक है। यह अंक नाटक में संयोग से वियोग की ओर निर्णायक परिवर्तन प्रस्तुत करता है।*

*5. **पञ्चम अंक — प्रत्याख्यान**: - शकुन्तला अपने आश्रमवासियों के साथ दुष्यन्त के राजदरबार में पहुँचती है। किन्तु दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त उसे पहचान नहीं पाते। शकुन्तला अपनी पहचान सिद्ध करने के लिए राजमुद्रिका दिखाना चाहती है, परन्तु मार्ग में वह अंगूठी खो चुकी होती है। फलतः दुष्यन्त उसे स्वीकार नहीं कर पाते। शकुन्तला अत्यन्त अपमान और पीड़ा से व्यथित होती है। अन्ततः दैवी शक्ति उसे अपने साथ ले जाती है। इस अंक में प्रेम का वियोग, नायिका का अपमान और नाटकीय संघर्ष चरम पर पहुँचता है।*

*6. **षष्ठ अंक — अभिज्ञान और पश्चात्ताप**: - एक मछुआरे को मछली के पेट से दुष्यन्त की वही राजमुद्रिका मिलती है और वह उसे राजा के पास पहुँचाता है। अंगूठी देखते ही दुष्यन्त को शकुन्तला की सम्पूर्ण स्मृति लौट आती है। अपने पूर्व व्यवहार को स्मरण करके राजा अत्यन्त दुःखी और पश्चात्तापग्रस्त हो जाते हैं। इसी समय देवकार्य के लिए दुष्यन्त को इन्द्र की सहायता करनी पड़ती है। देवासुर-संघर्ष में अपनी वीरता दिखाने के बाद भी उनका मन शकुन्तला की स्मृति से मुक्त नहीं होता। इस अंक में 'अभिज्ञान' के द्वारा विस्मृति का अन्त और प्रेम की पुनःचेतना होती है।*

*7. **सप्तम अंक — पुनर्मिलन**: - देवकार्य से लौटते हुए दुष्यन्त मारीच के आश्रम में पहुँचते हैं। वहाँ वे एक बालक को देखते हैं, जो असाधारण साहस और तेज से सम्पन्न है। वह सर्वदमन, अर्थात् दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र, है। इसके बाद दुष्यन्त की शकुन्तला से पुनः भेंट होती है। अब शकुन्तला पहले की अपेक्षा अधिक गम्भीर और तपःपूत दिखाई देती है। दुष्यन्त अपने अपराध के लिए पश्चात्ताप करते हैं और दोनों का पुनर्मिलन होता है। परिवार की पुनर्स्थापना के साथ नाटक का सुखान्त होता है।*

***निष्कर्षत:** अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अंक-विन्यास केवल घटनाओं का क्रम नहीं है, बल्कि नायक-नायिका के प्रेम के क्रमिक विकास, परीक्षा और परिष्कार का कलात्मक विधान है। यही इसकी कथावस्तु को मार्मिक तथा कालिदास की नाट्यकला को कालजयी बनाता है।*

प्रश्न-. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के प्रथम अंक का वैशिष्ट्य प्रस्तुत कीजिए-

उत्तर- अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथम अंक का वैशिष्ट्य: एक समीक्षा

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् का प्रथम अंक नाटक की सम्पूर्ण कथा का बीज-रूप है। इसमें राजा दुष्यन्त का मृगया करते हुए कण्वाश्रम में प्रवेश, तपोवन का मनोहारी वातावरण तथा शकुन्तला के साथ उसका प्रथम परिचय चित्रित हुआ है। इसी अंक में भावी प्रेमकथा की आधारभूमि निर्मित होती है।

***1. प्रभावशाली प्रारम्भ**: - नाटक का आरम्भ नान्दी और प्रस्तावना के पश्चात् राजा दुष्यन्त की मृगया से होता है। मृग का पीछा करते हुए राजा तपोवन की सीमा में पहुँचता है और आश्रम के मृग को न मारने की ऋषि की आज्ञा स्वीकार करता है। इससे उसके राजधर्म, संयम और तपोवन के प्रति सम्मान का परिचय मिलता है।*

***2. तपोवन का मनोरम चित्रण**: - प्रथम अंक की सबसे बड़ी विशेषताओं में तपोवन-प्रकृति का सजीव चित्रण है। आश्रम के वृक्ष, मृग, पक्षी, लताएँ तथा शांत वातावरण के माध्यम से कालिदास ने ऐसा प्राकृतिक संसार उपस्थित किया है, जिसमें हिंस्र मृगया से आए राजा का मन भी शान्त और कोमल हो जाता है। प्रकृति यहाँ केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि नाटक के भाव-विकास की सक्रिय सहचरी है।*

***3. दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रथम मिलन**: - प्रथम अंक का चरम आकर्षण दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रथम दर्शन है। शकुन्तला को सखियों के साथ आश्रम के पौधों को सींचते देखकर दुष्यन्त उसके सौन्दर्य और सरलता से आकृष्ट होता है। इस प्रकार कालिदास ने प्रेम के स्वाभाविक और क्रमिक उदय को अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है।*

***4. श्रृंगार रस का बीजारोपण**: - इस अंक में अभी प्रेम पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ है, फिर भी शृंगार रस के स्थायीभाव रति का बीजारोपण हो जाता है। दुष्यन्त की दृष्टि, शकुन्तला की लज्जा, सखियों का परिहास और दोनों की परस्पर उत्सुकता मिलकर भावी प्रणय की भूमिका तैयार करते हैं।*

***5. प्रकृति और मानवीय सौन्दर्य का समन्वय**: - कालिदास की मौलिकता यह है कि शकुन्तला के सौन्दर्य को उसके आश्रम-परिवेश से अलग करके नहीं देखते। लता, पुष्प और तपोवन की सहजता के बीच शकुन्तला का सौन्दर्य और अधिक प्रभावशाली हो उठता है। इस प्रकार प्रकृति और नारी-सौन्दर्य का अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है।*

***6. पात्र-चित्रण**: - प्रथम अंक में ही दुष्यन्त के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उभरते हैं—वह वीर योद्धा, प्रजापालक राजा, धर्मनिष्ठ पुरुष और संवेदनशील प्रेमी है। दूसरी ओर शकुन्तला सरल, लज्जाशील, प्रकृतिप्रेमी और कोमल हृदय वाली नायिका के रूप में सामने आती है। अनसूया और प्रियंवदा के माध्यम से नाटक में सहजता एवं विनोद का भी समावेश होता है।*

*7. **भाषा एवं काव्य-सौन्दर्य**: - प्रथम अंक की भाषा मधुर, चित्रात्मक और भावानुकूल है। कालिदास ने प्रकृति-वर्णन, उपमा तथा सूक्ष्म मनोभावों के माध्यम से नाटक को काव्यात्मक गरिमा प्रदान की है। साथ ही संवादों में नाटकीय स्वाभाविकता बनी रहती है। अतः यहाँ काव्य और नाटक का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।*

समग्र मूल्यांकन

प्रथम अंक की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसमें कालिदास ने कथानक, पात्र, प्रकृति और शृंगार—चारों का बीज एक साथ बो दिया है। मृगया से तपोवन, तपोवन से शकुन्तला-दर्शन और दर्शन से प्रेम की प्रथम अनुभूति तक की यात्रा अत्यन्त स्वाभाविक है।

निष्कर्षतः *अभिज्ञानशाकुन्तलम् का प्रथम अंक केवल कथा का आरम्भ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण नाटक की भावात्मक आधारभूमि है। तपोवन की शान्ति में प्रेम का अंकुरण, प्रकृति में सौन्दर्य का प्रस्फुटन और दुष्यन्त के हृदय में रति का उदय—यही प्रथम अंक की नाट्यकला का सार है। इसी कारण यह अंक कालिदास की प्रकृति-दृष्टि, चरित्र-चित्रण और शृंगार-योजना का अत्यन्त प्रभावशाली उदाहरण बन जाता है।*

अभिज्ञान शाकुन्तलम्: प्रथम अंक (प्रमुख श्लोकों की व्याख्या)

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरिष्टाभिरीशः॥1॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग:-*प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के प्रथम अंक की नान्दी है। नाटक के प्रारम्भ में नान्दी के माध्यम से कवि अपने इष्टदेव भगवान् शिव की स्तुति करते हुए नाटक के निर्विघ्न सम्पादन तथा दर्शकों के कल्याण की मंगलकामना करता है। इस नान्दी में शिव की अष्टमूर्ति का वर्णन हुआ है। जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु—इन आठ रूपों में शिव की सत्ता को स्वीकार करके कवि उनसे सबकी रक्षा की प्रार्थना करता है।*

हिन्दी अर्थः- *सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की जो प्रथम सृष्टि जल है; जो विधिपूर्वक अर्पित की गई यज्ञाहुति को वहन करने वाली अग्नि है; जो यज्ञकर्ता अर्थात् यजमान है; जो दो अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा काल का विधान करते हैं; जो शब्द को अपना गुण मानने वाला आकाश सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित है; जिसे समस्त बीजों की मूल प्रकृति पृथ्वी कहा जाता है; तथा जिसके द्वारा प्राणी प्राणवान् अर्थात् जीवित होते हैं—ऐसी इन आठ प्रत्यक्ष मूर्तियों से युक्त भगवान् शिव हमारी रक्षा करें।*

व्याख्या: - *कवि ने इस पद्य में भगवान् शिव के अष्टमूर्ति स्वरूप की कल्पना की है। यहाँ शिव किसी एक सीमित देव-रूप में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त परम सत्ता के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। जल को ब्रह्मा की आद्य सृष्टि कहा गया है, क्योंकि सृष्टि के विकास में जल का मूलभूत महत्त्व है। अग्नि यज्ञ में दी गई हवि को देवताओं तक पहुँचाती है, इसलिए वह शिव की दूसरी मूर्ति है। यजमान यज्ञ-कर्म का कर्ता है, अतः कर्म और कर्तृत्व का प्रतिनिधित्व करता है। सूर्य और चन्द्रमा दिन और रात्रि के नियमन द्वारा काल की गति को निर्धारित करते हैं। आकाश शब्द का आश्रय है और सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करता है। पृथ्वी समस्त बीजों की आधारभूत प्रकृति है, क्योंकि उससे वनस्पति तथा जीवन का विकास होता है। वायु प्राणियों को प्राण प्रदान करती है; अतः वह जीवन-शक्ति की प्रतीक है। इस प्रकार कालिदास ने प्रकृति के प्रमुख तत्त्वों में शिव का दर्शन कराकर 'समस्त विश्व शिवमय है'—इस उदात्त भाव को अभिव्यक्त किया है।*

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

(क) अष्टमूर्ति की उदात्त कल्पना:- *शिव को जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु के रूप में देखना कवि की व्यापक एवं उदात्त कल्पना का परिचायक है।*

(ख) अर्थगौरव:- *अत्यन्त संक्षिप्त पद्य में सृष्टि, यज्ञ, काल, आकाश, पृथ्वी और प्राण जैसे व्यापक तत्त्वों का समावेश किया गया है। यही कालिदास की अर्थगौरवपूर्ण शैली है।*

(ग) प्रकृति-दर्शन: - *पद्य में प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों को ईश्वर की मूर्तियाँ मानकर प्रकृति और परमात्मा का तादात्म्य स्थापित किया गया है।*

(घ) नान्दी का नाट्य-प्रयोजन: - *नाटक के आरम्भ में ईश्वर-स्तुति द्वारा मंगलकामना की गई है। इससे नाटक के निर्विघ्न सम्पादन तथा दर्शकों के कल्याण की भावना व्यक्त होती है।*

(ङ) भावभूमि की पूर्वपीठिका: - *अभिज्ञानशाकुन्तलम् में आगे तपोवन, वृक्ष, लताएँ, मृग-पक्षी तथा प्राकृतिक जीवन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। नान्दी में प्रकृति को ही ईश्वर की अभिव्यक्ति बताकर कवि ने नाटक की प्रकृति-प्रधान भावभूमि का संकेत आरम्भ में ही दे दिया है।*

(च) काव्य और दर्शन का समन्वय: - *पद्य में केवल धार्मिक स्तुति नहीं है, बल्कि काव्य-सौन्दर्य के साथ दार्शनिक विश्वदृष्टि का भी समन्वय हुआ है। ईश्वर की सर्वव्यापकता को प्रत्यक्ष प्राकृतिक तत्त्वों के माध्यम से अनुभवगम्य बनाया गया है।*

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः,पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैःश्रमविवृतमुखभ्रंशिभिःकीर्तवर्त्मा,पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।।७।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग: - *प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। प्रस्तावना के पश्चात् राजा दुष्यन्त कृष्णसार मृग का पीछा करते हुए रथ पर प्रवेश करता है। सारथि राजा के साथ है और सामने भागते हुए मृग को देख रहा है। राजा द्वारा छोड़े जाने वाले बाण के भय से कृष्णसार अत्यन्त तीव्र गति से भाग रहा है। वह कभी गर्दन मोड़कर पीछे रथ की ओर देखता है, कभी भय से अपने शरीर को आगे की ओर झुका देता है और ऊँची छलाँगें लगाता हुआ आगे बढ़ता है। सारथि उसी मृग की इन चेष्टाओं का अत्यन्त सजीव वर्णन करते हुए राजा से कहता है—"पश्य" (देखिए)। अर्थात् यह पद्य सारथि द्वारा राजा दुष्यन्त को कृष्णसार मृग की भागने की अवस्था का प्रत्यक्ष वर्णन है।*

हिन्दी अर्थ—*"देखिए! रथ की ओर लगी हुई दृष्टि वाला यह कृष्णसार मृग बार-बार अपनी गर्दन मोड़कर अत्यन्त मनोहर ढंग से पीछे देखता हुआ भाग रहा है। बाण के गिरने के भय से यह अपने शरीर के पिछले भाग को आगे की ओर अधिक झुका लेता है। आधी खाई हुई दर्भ-घासों को अपने पीछे गिराता हुआ और थकान से मुँह खोले हुए यह अपने पीछे मानो एक मार्ग बनाता जा रहा है। ऊँची छलाँगें लगाने के कारण यह आकाश में अधिक और पृथ्वी पर थोड़ी ही दूरी तय करता हुआ आगे बढ़ रहा है।"*

व्याख्या— *सारथि राजा दुष्यन्त को उस कृष्णसार मृग की गति दिखाता है, जिसका राजा पीछा कर रहा है। मृग अत्यन्त भयभीत है, क्योंकि उसे राजा के बाण का भय है। इसलिए वह पूरी शक्ति से भाग रहा है, फिर भी उसकी दृष्टि बार-बार पीछे आने वाले रथ पर जा रही है। इस कारण वह गर्दन को मोड़-मोड़कर रथ की ओर देखता है। उसकी यह चेष्टा कालिदास को अत्यन्त मनोहर दिखाई देती है। मृग के शरीर की गति का दूसरा चित्र और भी अधिक सूक्ष्म है। बाण के भय से वह अपने शरीर के पिछले भाग को आगे की ओर समेटकर अत्यन्त तीव्र गति से छलाँग लगाता है। भागते*

समय उसके मुख से आधी चबाई हुई दर्भ-घास गिरती जाती है और थकान के कारण उसका मुँह खुला हुआ है। इस प्रकार पीछे गिरती हुई घास उसके भागने के मार्ग का संकेत देती है। अन्त में कवि मृग की छलाँगों की तीव्रता को अद्भुत ढंग से दिखाता है—वह पृथ्वी पर कम और आकाश में अधिक दूरी तय करता हुआ प्रतीत होता है। अर्थात् उसकी छलाँगें इतनी ऊँची और तीव्र हैं कि प्रत्येक छलाँग में उसका अधिकांश मार्ग आकाश में ही पूरा होता दिखाई देता है। इस प्रकार कालिदास ने केवल यह नहीं कहा कि "मृग तेज भाग रहा है", बल्कि उसकी प्रत्येक शारीरिक चेष्टा को आँखों के सामने घटित होने वाले दृश्य की तरह प्रस्तुत किया है।

काव्यगत सौन्दर्य

1- **सजीव दृश्य-चित्रण** — मृग की गर्दन मोड़ना, पीछे देखना, घास गिराना, थकान से मुँह खोलना और ऊँची छलाँग लगाना—प्रत्येक चेष्टा का सूक्ष्म चित्रण है।

2- **क्रियाचित्रण की विशेषता** — 'मुहुरनुपतति', 'भ्रंशिभिः', 'प्लुतत्वात्' आदि पदों से मृग की गतिशीलता प्रत्यक्ष अनुभव होती है।

3- **उत्प्रेक्षात्मक सौन्दर्य** — "वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति" में ऐसा प्रतीत होता है कि मृग पृथ्वी पर कम और आकाश में अधिक चलता है।

4- **दृश्य-बिम्ब** — पूरा पद्य एक गतिशील चित्र की तरह सामने उपस्थित हो जाता है।

5- **भय एवं वेग का समन्वय** — बाण का भय मृग की गति को और अधिक तीव्र बना देता है।

नाट्यगत सौन्दर्य

इस पद्य का "पश्य" शब्द विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। सारथि राजा का ध्यान मृग की ओर आकर्षित करता है और उसके माध्यम से दर्शकों के सामने आखेट का गतिशील दृश्य उपस्थित होता है। इससे नाटक का आरम्भ अत्यन्त सजीव, गतिशील और कौतूहलपूर्ण बनता है।

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः॥८॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग: - प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। राजा दुष्यन्त कृष्णसार मृग का पीछा करते हुए अपने रथ पर आगे बढ़ रहा है। मृग अत्यन्त तीव्र गति से भाग रहा है और राजा भी उसके पीछे उसी वेग से जा रहा है। इस समय सारथि राजा के रथ के घोड़ों की अद्भुत गति और उनकी चेष्टाओं का वर्णन करता है। घोड़ों की लगाम छोड़ दी गई है; उनके शरीर आगे की ओर खिंच गए हैं, कान ऊपर उठे हुए हैं और उनकी पूँछों के चँवर जैसे बाल भी गति में स्थिर प्रतीत होते हैं। वे इतनी तीव्र गति से दौड़ रहे हैं कि अपने ही खुरों से उठाई हुई धूल को भी पीछे छोड़ देते हैं।

हिन्दी अर्थ—"लगाम छोड़ दिए जाने पर शरीर के अगले भाग को आगे की ओर फैलाए हुए, चँवर के समान अपनी पूँछों के अग्रभाग को स्थिर किए हुए तथा ऊपर उठे हुए कानों को स्थिर रखे हुए ये घोड़े मृग के समान वेग वाले होकर दौड़ रहे हैं। इनके द्वारा स्वयं उड़ाई गई धूल भी इनके वेग को पार नहीं कर सकती।"

व्याख्या— सारथि राजा के रथ में जुते हुए घोड़ों की असाधारण गति का वर्णन करता है। घोड़ों को पूरी स्वतंत्रता से दौड़ने के लिए उनकी लगाम छोड़ दी गई है। वे इतने वेग से दौड़ते हैं कि उनके शरीर का अग्रभाग आगे की ओर पूरी तरह फैल गया है। तेज गति के कारण उनकी पूँछ के बाल भी सामान्य रूप से हिलते हुए दिखाई नहीं देते, बल्कि चँवर की शिखा के समान स्थिर प्रतीत होते हैं। उनके कान ऊपर उठे हुए हैं और गति के बीच भी स्थिर दिखाई देते हैं। घोड़ों के तीव्र वेग से उनके खुरों के नीचे से धूल का गुबार उठता है। परन्तु कवि की कल्पना की चरम सीमा यह है कि वही धूल भी घोड़ों की गति को पार नहीं कर पाती। अर्थात् घोड़े इतनी तेजी से दौड़ रहे हैं कि उनके द्वारा उड़ाई गई धूल भी पीछे रह जाती है। इस प्रकार मृग की तीव्र गति का पीछा करने के लिए राजा का रथ भी मृग के समान वेगवान हो गया है।

काव्यगत सौन्दर्य

1- **उत्प्रेक्षा** — घोड़ों की गति इतनी तीव्र है कि उनकी अपनी उड़ाई हुई धूल भी उनका वेग पार नहीं कर सकती—यह अत्यन्त प्रभावशाली कल्पना है।

2- **उपमा** — "मृगजवाः" द्वारा घोड़ों के वेग की तुलना मृग की गति से की गई है।

3- **दृश्य-बिम्ब** — आगे की ओर फैले शरीर, ऊपर उठे कान, स्थिर पूँछ और उड़ती धूल से तीव्रगामी रथ का सजीव चित्र बनता है।

4- **अतिशयोक्ति** — धूल का भी घोड़ों से पीछे रह जाना उनके असाधारण वेग को प्रभावशाली बनाने वाली अतिशयोक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति है।

नाट्यगत सौन्दर्य

यह पद्य आखेट-दृश्य की गतिशीलता और तीव्रता को बढ़ाता है। मृग के पीछे राजा का रथ जिस वेग से दौड़ रहा है, उसका दृश्यात्मक प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है। इससे दुष्यन्त की वीरता, आखेट-कौशल तथा राजसी वैभव भी उभरकर सामने आते हैं।

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं समरेखं नयनयोर्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्।।९।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग:- प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। प्रस्तावना के पश्चात् राजा दुष्यन्त कृष्णसार मृग का पीछा करते हुए रथ पर आता है। सारथि रथ के अश्वों को अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ाता है। पिछले पद्य में सारथि ने घोड़ों के असाधारण वेग का वर्णन करते हुए राजा से कहा था— "पश्य पश्य"। राजा उस कथन की पुष्टि करते हुए कहता है कि वास्तव में ये घोड़े इतने वेग से चल रहे हैं कि सूर्य और इन्द्र के घोड़ों को भी पीछे छोड़ रहे हैं। इसके बाद राजा रथ की तीव्र गति के कारण दृष्टि को होने वाले विभिन्न प्रकार के अनुभवों का वर्णन प्रस्तुत करता है।

हिन्दी अर्थ:- "रथ की तीव्र गति के कारण जो वस्तु देखने में छोटी दिखाई देती है, वह अचानक बड़ी दिखाई देने लगती है; जो वस्तु बीच से अलग दिखाई देती है, वह जुड़ी हुई-सी प्रतीत होती है; जो वस्तु स्वभाव से टेढ़ी है, वह भी मेरी आँखों के सामने सीधी रेखा जैसी दिखाई देती है। रथ के वेग के कारण कोई भी वस्तु क्षणभर के लिए भी न तो मुझसे दूर रहती है और न ही मेरे पास।"

व्याख्या:- राजा दुष्यन्त सारथि द्वारा घोड़ों के वेग की प्रशंसा को स्वीकार करते हुए कहता है कि रथ की गति वास्तव में असाधारण है। इतनी तीव्र गति से रथ आगे बढ़ रहा है कि आसपास की वस्तुओं का सामान्य स्वरूप आँखों को वैसा दिखाई ही नहीं देता जैसा वास्तव में है। जो वस्तु सामान्यतः दूर होने के कारण बहुत छोटी दिखाई देती है, रथ के तीव्र वेग से उसके निकट पहुँचते ही वह अचानक बड़ी दिखाई देने लगती है। इसी प्रकार जो वस्तु वास्तव में बीच से अलग-अलग है, वह अत्यधिक तीव्र गति के कारण आँखों को जुड़ी हुई प्रतीत होती है। इसी प्रकार कोई वस्तु स्वभावतः टेढ़ी या वक्र है, तो रथ की तीव्र गति के कारण वह भी आँखों के सामने सीधी रेखा के समान दिखाई देती है।

अन्त में राजा इस तीव्र गति का चरम प्रभाव बताता है—रथ इतनी तेजी से आगे बढ़ रहा है कि कोई वस्तु एक क्षण के लिए भी उसके साथ स्थिर सम्बन्ध में नहीं रहती। दूर की वस्तुएँ तुरन्त समीप आ जाती हैं और समीप की वस्तुएँ तुरन्त पीछे छूट जाती हैं। इस प्रकार रथ का वेग राजा की दृष्टि के सामने संसार के दृश्य-रूप को ही बदलता हुआ प्रतीत होता है।

काव्यगत सौन्दर्य

1-दृश्य-चित्रण — रथ की गति के कारण वस्तुओं के बदलते हुए रूप का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण हुआ है।

2-उत्प्रेक्षा — अलग वस्तु का जुड़ी हुई तथा टेढ़ी वस्तु का सीधी दिखाई देना तीव्र गति के प्रभाव को कल्पनाशील ढंग से व्यक्त करता है।

3- स्वभावोक्ति — तीव्र गति के कारण होने वाली दृश्य-प्रतीति का स्वाभाविक एवं यथार्थ वर्णन हुआ है।

4-गति-चित्रण — पूरे पद्य में रथ की तीव्र गति निरन्तर अनुभूत होती है।

5-वैचित्र्यपूर्ण दृष्टि — बाह्य वस्तुओं के बदलते हुए दृश्य के माध्यम से कवि ने गति को प्रत्यक्ष अनुभव करा दिया है।

नाट्यगत सौन्दर्य

यह पद्य केवल घोड़ों की गति का वर्णन नहीं करता, बल्कि मंच पर रथ की तीव्र गति का आभास कराता है। इससे आखेट-दृश्य में गतिशीलता बनी रहती है और राजा दुष्यन्त के वीर, उत्साही एवं आखेटप्रिय व्यक्तित्व की प्रभावशाली स्थापना होती है।

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः,प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतय शब्दं सहन्ते मृगास्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः।।१४।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग — प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। नाटक के प्रारम्भ में राजा दुष्यन्त मृगया के लिए वन में जाते हैं और एक मृग का पीछा करते हुए अपने सारथि सहित महर्षि कण्व के तपोवन के समीप पहुँचते हैं। आश्रम-मृग का वध करने के लिए जब राजा बाण चलाने ही वाले होते हैं, तब वैखानस तपस्वी उन्हें रोककर आश्रम-मृग की रक्षा करने का अनुरोध करता है। राजा अपने बाण को वापस ले लेते हैं। तपस्वी राजा के इस धर्मसम्मत आचरण से प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद देता है और आश्रम में प्रवेश करने का निमन्त्रण देता है। तत्पश्चात् राजा अपने सारथि से अश्वों को आश्रम की ओर ले चलने के लिए कहते हैं और चारों ओर दृष्टि डालकर तपोवन की रमणीयता तथा उसकी विशिष्ट प्राकृतिक विशेषताओं को पहचानते हैं। वृक्षों के नीचे गिरे हुए नीवार, इंगुदी-फलों को फोड़ने से चिकने हुए पत्थर, मनुष्यों से निर्भय होकर विचरण करते हुए मृग तथा वल्कल से टपकते

जल से चिह्नित मार्गों को देखकर राजा दुष्यन्त अपने सारथि से कहते हैं कि यह निश्चय ही तपोवन का विस्तृत प्रदेश है। इसी आश्रम-वर्णन के अन्तर्गत प्रस्तुत पद्य कहा गया है।

हिन्दी अर्थ:- राजा कहते हैं—वृक्षों के नीचे तोतों के घोंसलों से गिरे हुए नीवार के दाने दिखाई दे रहे हैं। कहीं-कहीं इंगुदी के फलों को फोड़ने के कारण अत्यन्त चिकने हुए पत्थर दिखाई पड़ते हैं। यहाँ मनुष्यों पर विश्वास उत्पन्न हो जाने के कारण हिरण अपनी सामान्य गति से चलते हुए रथ के शब्द को भी सहन कर रहे हैं अर्थात् उससे भयभीत होकर भाग नहीं रहे हैं। तथा जलाशयों की ओर जाने वाले मार्ग वल्कल-वस्त्रों के अग्रभाग से टपकने वाले जल की रेखाओं से चिह्नित हैं।

व्याख्या:- राजा दुष्यन्त तपोवन के समीप पहुँचकर उसके सूक्ष्म प्राकृतिक संकेतों को देखकर पहचान लेते हैं कि यह साधारण वन नहीं, बल्कि तपस्वियों का आश्रम है। यहाँ प्रकृति और आश्रमवासियों का जीवन एक-दूसरे में इस प्रकार घुला-मिला है कि छोटी-से-छोटी वस्तु भी आश्रम के शांत, पवित्र और अहिंसामय जीवन का परिचय देती है। वृक्षों से गिरे हुए नीवार बताते हैं कि आश्रम के पक्षी निर्भय होकर यहाँ विचरण करते हैं। इंगुदी के फलों को फोड़ने से चिकने हुए पत्थर तपस्वियों के दैनिक जीवन का संकेत देते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्य निर्भय मृगों का है—वे रथ की आवाज सुनकर भी नहीं भागते, क्योंकि आश्रम में उन्हें मनुष्यों से भय नहीं है। इसी प्रकार वल्कल से टपकते जल की रेखाएँ आश्रमवासियों के जल-स्नान एवं दैनिक तपस्वी जीवन की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार दुष्यन्त केवल बाहरी सौन्दर्य नहीं देख रहे हैं, बल्कि प्रकृति, प्राणी और तपस्वी जीवन के अद्भुत सामंजस्य को अनुभव कर रहे हैं।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

प्रकृति-चित्रण: आश्रम का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म एवं स्वाभाविक है।

स्वाभावोक्ति: आश्रम में जो वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से दिखाई देती हैं, उनका सहज वर्णन हुआ है; अतः यहाँ स्वाभावोक्ति अलंकार प्रमुख माना जाता है।

प्राणी-प्रकृति सामंजस्य: मृगों का मनुष्यों से निर्भय होकर विचरण करना आश्रम के अहिंसामय वातावरण को व्यक्त करता है।

दृश्यात्मकता: नीवार, चिकने पत्थर, मृग और जल की रेखाओं के माध्यम से आश्रम का सजीव चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है।

नाटकीय महत्त्व: यह वर्णन दुष्यन्त के मन में आश्रम के प्रति उत्पन्न आकर्षण को प्रकट करता है और आगे होने वाले शकुन्तला-दर्शन के लिए वातावरण तैयार करता है।

रस: यहाँ मुख्यतः शान्त रस की पृष्ठभूमि में प्रकृति-सौन्दर्य तथा कोमल शृङ्गार की पूर्वपीठिका निर्मित होती है।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूलाः भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्भाङ्कुरायां नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति।।१५।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग— प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। नाटक के प्रारम्भ में राजा दुष्यन्त मृगया के लिए वन में जाते हैं और एक मृग का पीछा करते हुए अपने सारथि सहित

महर्षि कण्व के तपोवन के समीप पहुँचते हैं। आश्रम के मृग पर बाण चलाने के लिए उद्यत राजा को वैखानस तपस्वी रोकता है और आश्रम-मृग को अवध्य बताते हुए उससे हिंसा न करने का अनुरोध करता है। राजा तपस्वी की बात मानकर बाण वापस ले लेते हैं। उनके इस धर्मसम्मत आचरण से प्रसन्न होकर तपस्वी उन्हें आशीर्वाद देता है और आश्रम में प्रवेश करने का निमन्त्रण देता है। तत्पश्चात् राजा अपने सारथि के साथ आश्रम की ओर बढ़ते हुए उसके वातावरण का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं। पहले वे आश्रम की पहचान कराने वाले विभिन्न प्राकृतिक संकेतों—वृक्षों के नीचे पड़े नीवार, इंगुदी के फलों से चिकने हुए पत्थर, निर्भय होकर विचरण करते मृग तथा वल्कल से टपकते जल से चिह्नित मार्गों—का वर्णन करते हैं। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए राजा दुष्यन्त तपोवन के और अधिक समीप पहुँचकर सिंचाई की छोटी-छोटी धाराओं से धुली वृक्षों की जड़ों, यज्ञ में प्रयुक्त घी के धुएँ से परिवर्तित कोमल पत्तों की लालिमा तथा भयमुक्त होकर धीरे-धीरे चरते हिरण-शावकों को देखकर आश्रम के शांत, पवित्र एवं तपोमय वातावरण का वर्णन करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत पद्य में दुष्यन्त के द्वारा कण्वाश्रम की प्राकृतिक एवं धार्मिक जीवन-पद्धति का सजीव चित्रण किया गया है। पद्य के तुरन्त बाद राजा तपोवनवासियों को बाधा न हो, इस विचार से रथ रोकने और स्वयं उतरने का निर्णय करते हैं।

हिन्दी अर्थ:- *वायु से चंचल छोटी-छोटी जलधाराओं के जल से यहाँ वृक्षों की जड़ें धुली हुई हैं। यज्ञ में डाले गए घी से उठने वाले धुएँ के कारण कोमल पत्तों की स्वाभाविक लालिमा बदल गई है। और देखो! इस सुन्दर उपवन की भूमि पर कटे हुए दर्भ के अंकुर दिखाई दे रहे हैं तथा मनुष्यों के प्रति भय समाप्त हो जाने के कारण हिरण के बच्चे यहाँ धीरे-धीरे विचरण कर रहे हैं।*

व्याख्या:- *राजा दुष्यन्त कण्वाश्रम के समीप पहुँचकर उसके वातावरण को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। उन्हें यहाँ साधारण वन का दृश्य नहीं, बल्कि प्रकृति और तपस्वी जीवन का अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है। छोटी-छोटी जलधाराओं का जल वायु के कारण चंचल होकर वृक्षों की जड़ों को धो रहा है। यज्ञ में घी की आहुति देने से उठने वाला धुआँ आश्रम के कोमल पत्तों की प्राकृतिक लालिमा को प्रभावित कर रहा है। इससे यह संकेत मिलता है कि आश्रम में नियमित रूप से यज्ञ एवं धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न होते हैं। सबसे मनोहर दृश्य उन निर्भय हिरण-शावकों का है, जो आश्रमवासियों से किसी प्रकार का भय न होने के कारण धीरे-धीरे घूम रहे हैं। इससे आश्रम का अहिंसामय, शांत और करुणापूर्ण वातावरण अत्यन्त प्रभावशाली रूप में सामने आता है। इस प्रकार कालिदास ने आश्रम का चित्रण केवल वृक्ष-पौधों के माध्यम से नहीं किया, बल्कि जल, वायु, यज्ञधूम, वनस्पति और वन्यप्राणियों—सभी को एक साथ जोड़कर किया है।*

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

प्रकृति-चित्रण: *जलधारा, वृक्ष, किसलय, यज्ञधूम और हिरण-शावकों के माध्यम से तपोवन का सजीव चित्र उपस्थित किया गया है।*

स्वाभाविकता: *आश्रम के दैनिक जीवन से जुड़े हुए अत्यन्त सूक्ष्म संकेतों द्वारा उसका वातावरण निर्मित किया गया है।*

अहिंसामय वातावरण: *"नष्टाशङ्का हरिणशिशवः" आश्रम की अभयदायिनी प्रकृति को व्यक्त करता है।*

धार्मिक वातावरण: *"आज्यधूमोद्गम" के द्वारा यज्ञ एवं तपस्या का संकेत मिलता है।*

चित्रात्मकता: पाठक के सामने ऐसा दृश्य उपस्थित होता है मानो वह स्वयं आश्रम के मध्य खड़ा होकर उसे देख रहा हो।

नाटकीय महत्त्व: यह वर्णन दुष्यन्त को बाह्य वन से तपोवन की विशिष्ट दुनिया में प्रवेश कराता है और आगे होने वाले शकुन्तला-दर्शन के लिए वातावरण तैयार करता है।

रस: यहाँ मुख्यतः शान्त रस की प्रधानता है; साथ ही कोमल प्रकृति-वर्णन के कारण शृङ्गार की पूर्वपीठिका भी निर्मित होती है।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥१६॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग— प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। नाटक के प्रारम्भ में राजा दुष्यन्त मृगया के लिए वन में जाते हैं और एक मृग का पीछा करते हुए महर्षि कण्व के तपोवन के समीप पहुँचते हैं। आश्रम-मृग पर बाण चलाने के लिए उद्यत राजा को वैखानस तपस्वी रोकता है और आश्रम के निरपराध मृग की रक्षा करने का अनुरोध करता है। राजा अपने बाण को वापस लेकर तपस्वी की आज्ञा स्वीकार करता है। उसके इस धर्मसम्मत आचरण से प्रसन्न होकर तपस्वी उसे चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद देता है और आश्रम में प्रवेश करने के लिए आमन्त्रित करता है।

राजा जब आश्रम के समीप पहुँचता है, तब वह वहाँ की शान्त, पवित्र एवं तपोमय प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। वह नीवार के दानों, इंगुदी-फलों से चिकने हुए पत्थरों, निर्भय हिरणों, जलधाराओं से धुली वृक्ष-जड़ों तथा यज्ञधूम से परिवर्तित किसलयों आदि के माध्यम से आश्रम की विशिष्टता अनुभव करता है। तत्पश्चात् वह आश्रम-द्वार पर पहुँचकर रथ से उतरता और आश्रम में प्रवेश करता है। प्रवेश करते समय उसकी दाहिनी भुजा फड़कती है। इस शुभ शकुन को देखकर वह पहले आश्चर्य करता है कि इस शान्त और विरक्त आश्रम में इस शकुन का फल कहाँ प्राप्त होगा; फिर तत्काल अपने विचार को बदलते हुए कहता है कि जो घटनाएँ भविष्य में घटित होनी होती हैं, उनके लिए मार्ग और अवसर कहीं भी बन सकते हैं। इसी मनोभाव की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद्य में हुई है।

हिन्दी अर्थ:- यह आश्रम-स्थान तो अत्यन्त शान्त है और मेरी भुजा भी फड़क रही है। यहाँ इस शकुन का फल कहाँ से प्राप्त होगा? अथवा, जो घटनाएँ होने वाली होती हैं, उनके लिए मार्ग तो सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं।

व्याख्य:- दुष्यन्त आश्रम में प्रवेश करते समय अपनी दाहिनी भुजा के फड़कने को शुभ शकुन के रूप में अनुभव करता है। भारतीय परम्परा में ऐसी स्थिति को प्रायः किसी शुभ घटना के आगमन का संकेत माना जाता था। परन्तु दुष्यन्त के सामने एक समस्या है। वह सोचता है कि यह स्थान तो तपस्वियों का शान्त, विरक्त और सांसारिक आकर्षणों से दूर आश्रम है। अतः यदि भुजा का फड़कना किसी अभीष्ट प्राप्ति का संकेत है, तो उसका फल यहाँ कैसे प्राप्त हो सकता है?

फिर दुष्यन्त स्वयं ही अपने संदेह का समाधान करता है—"भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र" अर्थात् जो होना निश्चित है, उसके घटित होने के लिए प्रकृति अथवा नियति कहीं भी अवसर उत्पन्न कर सकती है। यह कथन आगे आने वाली सम्पूर्ण कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में इसी आश्रम में दुष्यन्त की शकुन्तला से भेंट होने

वाली है और उसका जीवन एक निर्णायक मोड़ लेने वाला है। इस प्रकार दुष्यन्त का सहज-सा प्रतीत होने वाला शकुन-विचार आगे की कथा की पूर्वपीठिका बन जाता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

शकुन-वर्णन: दाहिनी भुजा का फड़कना शुभ शकुन के रूप में अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत हुआ है।

मनोवैज्ञानिक चित्रण: दुष्यन्त पहले सम्भावना पर संदेह करता है और फिर स्वयं ही उसका समाधान करता है। इससे उसके अन्तर्मन की चंचलता और जिज्ञासा प्रकट होती है।

सूक्तिपरकता:-"भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र" अत्यन्त प्रसिद्ध एवं सारगर्भित उक्ति है—नियत होने वाली घटनाओं के लिए अवसर सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

अलंकार: उत्तरार्ध द्वारा पूर्वार्ध के विचार का सामान्य सिद्धान्त से समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार माना जाता है।

नाटकीय महत्त्व: यह पद्य आगे होने वाली दुष्यन्त-शकुन्तला भेंट की पूर्वसूचना देता है।

रस:यहाँ आश्चर्य,कौतूहल और भावी मिलन की सम्भावना के कारण शृङ्गार की पूर्वपीठिका निर्मित होती है। **छन्द**: आर्या।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।।१७।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग:- प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। नाटक के प्रारम्भ में राजा दुष्यन्त मृगया के लिए वन में जाते हैं और एक मृग का पीछा करते हुए महर्षि कण्व के तपोवन के समीप पहुँचते हैं। आश्रम-मृग पर बाण चलाने के लिए उद्यत राजा को वैखानस तपस्वी रोकता है। राजा अपने बाण को वापस लेकर आश्रम-मृग की रक्षा करता है, जिससे प्रसन्न होकर तपस्वी उसे चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद देता है और आश्रम में प्रवेश करने का निमन्त्रण देता है। राजा आश्रम की ओर बढ़ते हुए वहाँ की शान्ति, पवित्रता और प्रकृति के साथ तपस्वियों के जीवन के अद्भुत सामंजस्य को देखता है। वह जलधाराओं से धुली वृक्षों की जड़ों, यज्ञधूम से परिवर्तित किसलयों तथा मनुष्यों से निर्भय होकर विचरण करते हिरण-शावकों का वर्णन करता है। आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् उसे समीप की वृक्षवाटिका की ओर से कुछ मधुर वार्तालाप सुनाई देता है। उत्सुकतावश वह वहाँ पहुँचता है और देखता है कि कण्व की आश्रम-कन्याएँ अपने-अपने पात्रों से वृक्षों को जल देने आ रही हैं। उनमें शकुन्तला को देखकर राजा उसके अनुपम सौन्दर्य से चकित हो उठता है। इसी प्रथम दर्शन से प्रभावित होकर राजा दुष्यन्त मन-ही-मन उसके सौन्दर्य की तुलना राजमहल के अन्तःपुर तथा वन की प्राकृतिक लताओं से करते हुए प्रस्तुत पद्य कहता है। तत्पश्चात् वह उसकी गतिविधियों को देखने के लिए समीप की छाया में रुक जाता है।

विशेष बात:- यहाँ "आश्रमवासिनो जनस्य" से आशय सामान्य आश्रमवासी व्यक्ति मात्र नहीं, बल्कि शकुन्तला जैसी आश्रम-कन्या से है। राजा का आशय है—यदि आश्रम में रहने वाली इस कन्या का ऐसा अनुपम सौन्दर्य है, जो राजमहल के अन्तःपुर में भी दुर्लभ है, तो वन की स्वाभाविक लताओं ने भी राजकीय उद्यानों की सँवारी हुई लताओं को पीछे छोड़ दिया है।

हिन्दी अर्थ:- *यदि आश्रम में रहने वाली इस कन्या का ऐसा सौन्दर्य है, जो राजमहल के अन्तःपुर में भी दुर्लभ है, तो निश्चय ही वन की लताओं ने अपने स्वाभाविक सौन्दर्य-गुणों से उद्यान की लताओं को भी पीछे छोड़ दिया है।*

व्याख्या:- *राजा दुष्यन्त पहली बार शकुन्तला को देखता है। वह आश्रम-कन्या होते हुए भी असाधारण रूप से सुन्दरी है। उसके शरीर की कोमलता, स्वाभाविक सौन्दर्य और आकर्षण को देखकर राजा आश्चर्यचकित हो जाता है। राजा के लिए राजमहल के अन्तःपुर की स्त्रियाँ और राजकीय उद्यानों की लताएँ स्वाभाविक रूप से सुन्दर और सुसज्जित होती हैं। परन्तु यहाँ उसे अनुभव होता है कि आश्रम की यह वन-कन्या बिना किसी कृत्रिम सज्जा के भी इतनी मनोहर है कि राजमहल का सौन्दर्य भी उसके सामने फीका पड़ जाता है। इसी भाव को कालिदास ने अत्यन्त कलात्मक उपमा के माध्यम से व्यक्त किया है—यदि आश्रमवासी कन्या का रूप अन्तःपुर में भी दुर्लभ है, तो निश्चित ही वन की स्वाभाविक लताओं ने उद्यान की कृत्रिम रूप से सँवारी गई लताओं को सौन्दर्य में परास्त कर दिया है। इस प्रकार पद्य में शकुन्तला के सहज, अकृत्रिम और अप्रतिम सौन्दर्य का प्रथम प्रभाव अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है।*

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

स्वाभाविक सौन्दर्य का चित्रण: *शकुन्तला के सौन्दर्य में किसी कृत्रिम सजावट का उल्लेख नहीं है; उसका सौन्दर्य सहज एवं प्राकृतिक है।*

उपमा/दृष्टान्तात्मक योजना: *शकुन्तला के सौन्दर्य की तुलना वनलताओं और राजकीय सौन्दर्य की तुलना उद्यानलताओं से की गई है।*

व्यतिरेक की प्रधानता: *शकुन्तला के सौन्दर्य को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए राजमहल के अन्तःपुर की स्त्रियों तथा उद्यानलताओं को पीछे दिखाया गया है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार की स्पष्ट छटा है।*

मनोवैज्ञानिक सौन्दर्य: *पहली ही दृष्टि में दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति आकर्षित होना उसके मन की तत्कालीन भावावस्था को व्यक्त करता है।*

नाटकीय महत्त्व: *यह पद्य दुष्यन्त-शकुन्तला के प्रथम दर्शन और भावी प्रेम की निर्णायक भूमिका तैयार करता है।*

रस: *यहाँ शृङ्गार रस का आलम्बन-निर्माण प्रारम्भ हो जाता है।*

छन्द: *आर्या जाति।*

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥१८॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग — *प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। नाटक के प्रारम्भ में राजा दुष्यन्त मृगया करते हुए एक मृग का पीछा करते-करते महर्षि कण्व के तपोवन के समीप पहुँचते हैं। आश्रम-मृग पर बाण चलाने से वैखानस तपस्वी उन्हें रोकता है। राजा अपने बाण को वापस लेकर आश्रम के प्राणियों की रक्षा करता है। उसके इस धर्मसम्मत आचरण से प्रसन्न होकर तपस्वी उसे आशीर्वाद देता है और आश्रम में प्रवेश करने का निमन्त्रण देता है। राजा आश्रम में पहुँचकर वहाँ की शान्त, पवित्र तथा प्रकृति-संवलित जीवन-पद्धति का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। इसी बीच उसकी दृष्टि आश्रम की वृक्षवाटिका में अनसूया और प्रियंवदा के साथ वृक्षों को सींचती हुई शकुन्तला पर पड़ती है। शकुन्तला के अनुपम, सहज और अकृत्रिम सौन्दर्य से प्रभावित होकर राजा पहले*

उसके रूप की प्रशंसा करता है। फिर यह देखकर कि इतनी कोमल एवं मनोहर युवती को महर्षि कण्व ने आश्रम-धर्म के अन्तर्गत वृक्षों में जल सींचने जैसे श्रमसाध्य कार्य में लगा रखा है, राजा को कण्व की दूरदर्शिता पर आश्चर्य होता है। उसी भाव में वह कहता है कि जो ऋषि ऐसे स्वाभाविक रूप से मनोहर शरीर को तपस्या के योग्य बनाने का प्रयास करता है, वह मानो नीलकमल के कोमल पत्ते की धार से कठोर शमी-लता को काटने का प्रयास कर रहा है। इस प्रसंग का मुख्य बिन्दु यह है कि- यहाँ दुष्यन्त कण्व की निन्दा वास्तव में नहीं, बल्कि शकुन्तला की असाधारण कोमलता और सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य व्यक्त कर रहा है। उसके लिए शकुन्तला का कोमल शरीर तपस्या के कठोर जीवन के सर्वथा विपरीत प्रतीत होता है। यही भाव आगे के पद्य में उसके सौन्दर्य-वर्णन को और विकसित करता है।

हिन्दी अर्थ:- जो ऋषि इस स्वाभाविक रूप से मनोहर शरीर को तपस्या करने के योग्य बनाना चाहता है, वह निश्चय ही नीले कमल के पत्ते की धार से शमी की लता को काटने का प्रयास कर रहा है।

व्याख्या:- राजा दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर उसके अत्यन्त कोमल, स्वाभाविक और मनोहर शरीर से प्रभावित हो जाता है। वह सोचता है कि जिस युवती का शरीर इतना कोमल है, उसे तपस्या के कठोर जीवन के अनुकूल बनाने का प्रयास करना कितना कठिन है!

इसी असम्भव-से लगने वाले प्रयास को कालिदास ने अत्यन्त सुन्दर उपमा के माध्यम से व्यक्त किया है। शमी की लता अपेक्षाकृत कठोर है, जबकि नीलकमल का पत्ता अत्यन्त कोमल होता है। अतः नीलकमल के कोमल पत्ते से शमी की लता को काटना जितना असम्भव है, उतना ही इस कोमल शरीर को कठोर तपस्या के अनुकूल बनाना भी दुष्यन्त को प्रतीत होता है। यहाँ दुष्यन्त के मन में शकुन्तला के प्रति उत्पन्न प्रथम आकर्षण भी स्पष्ट दिखाई देता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

उपमा का अद्भुत प्रयोग: शकुन्तला के कोमल शरीर की तुलना अप्रत्यक्ष रूप से नीलोत्पलपत्र से और तपस्या की कठोरता की तुलना शमी-लता से की गई है।

अर्थालंकार: यहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव अत्यन्त प्रसिद्ध है—शकुन्तला के शरीर को तपःक्षम बनाने का प्रयास और नीलकमल-पत्र से शमी-लता काटने का प्रयास परस्पर प्रतिबिम्बित हैं।

स्वाभाविक सौन्दर्य: "अव्याजमनोहरम्" पद शकुन्तला के अकृत्रिम सौन्दर्य को अत्यन्त प्रभावशाली बनाता है।

मनोवैज्ञानिक चित्रण: दुष्यन्त के मन में शकुन्तला के प्रति उत्पन्न प्रथम आकर्षण और उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त होती है।

नाटकीय महत्त्व: यह पद्य दुष्यन्त के प्रथम दर्शनजन्य शृङ्गार-भाव को आगे बढ़ाता है और उसके मन में शकुन्तला के प्रति अनुराग की नींव रखता है।

छन्द: वंशस्थम्।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥२०॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग:- प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। नाटक के प्रारम्भ में राजा दुष्यन्त मृगया करते हुए एक मृग का पीछा करते-करते महर्षि कण्व

के तपोवन के समीप पहुँचते हैं। आश्रम-मृग पर बाण चलाने से वैखानस तपस्वी उन्हें रोकता है। राजा अपने बाण को वापस लेकर आश्रम के प्राणियों की रक्षा करता है। उसके इस धर्मसम्मत आचरण से प्रसन्न होकर तपस्वी उसे आशीर्वाद देता है और आश्रम में प्रवेश करने का निमन्त्रण देता है। राजा आश्रम में पहुँचकर वहाँ के शान्त, पवित्र और प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित होता है। इसी बीच उसकी दृष्टि अनसूया और प्रियंवदा के साथ वृक्षों को सींचती हुई शकुन्तला पर पड़ती है। शकुन्तला के सहज सौन्दर्य से राजा अत्यन्त प्रभावित होता है और उसके सौन्दर्य को राजमहल के अन्तःपुर तथा वन की लताओं की अपेक्षा श्रेष्ठ बताता है। वह यह भी अनुभव करता है कि उसके नवयौवन के अनुरूप वल्कल-वस्त्र उसके सौन्दर्य को ढकने वाला है। किन्तु जब वह ध्यानपूर्वक देखता है कि वल्कल-वस्त्र भी शकुन्तला के सौन्दर्य को कम करने के स्थान पर और अधिक मनोहर बना रहा है, तब कमल और चन्द्रमा के उदाहरण देकर वह इस सार्वभौम सत्य को व्यक्त करता है कि स्वाभाविक रूप से सुन्दर आकृति के लिए कोई भी वस्तु अलंकार बन जाती है। इसी भाव की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद्य में हुई है।

हिन्दी अर्थ:- काई से लिपटा हुआ कमल भी सुन्दर लगता है और चन्द्रमा का कलंक भी उसकी शोभा को बढ़ाता है। उसी प्रकार यह सुकुमारी शकुन्तला वल्कल-वस्त्र धारण करने पर भी और अधिक मनोहर लग रही है। वास्तव में स्वाभाविक रूप से सुन्दर आकृतियों के लिए ऐसी कौन-सी वस्तु है जो अलंकार नहीं बन जाती?

व्याख्या:- दुष्यन्त शकुन्तला के स्वाभाविक सौन्दर्य से इतना प्रभावित है कि उसे लगता है कि कोई भी बाहरी वस्तु उसके सौन्दर्य को नष्ट नहीं कर सकती। इसके लिए वह दो सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। पहला—काई से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर रहता है। दूसरा—चन्द्रमा का कलंक भी उसकी शोभा को बढ़ाता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार शकुन्तला ने आश्रम की परम्परा के अनुसार वल्कल-वस्त्र धारण किया है, जो सामान्यतः राजसी सौन्दर्य का अलंकार नहीं माना जाता। फिर भी वही वल्कल उसके सहज सौन्दर्य को और अधिक आकर्षक बना रहा है। अन्त में दुष्यन्त एक सूक्तिपरक निष्कर्ष देता है—"मधुराणाम् आकृतीनाम् किमिव मण्डनं न?" अर्थात् जो वस्तु स्वभाव से ही सुन्दर है, उसके लिए लगभग प्रत्येक वस्तु अलंकार बन सकती है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

उपमा अलंकार: काई से युक्त कमल और कलंकयुक्त चन्द्रमा के उदाहरणों द्वारा शकुन्तला के सौन्दर्य को स्पष्ट किया गया है।

पूर्णोपमा: कमल, चन्द्रमा और शकुन्तला—तीनों के सौन्दर्य में समान भाव की स्थापना हुई है।

सौन्दर्य-दृष्टि: कालिदास ने कृत्रिम अलंकरण से अधिक स्वाभाविक सौन्दर्य को महत्त्व दिया है।

सूक्तिपरकता: "किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्" एक अत्यन्त सारगर्भित उक्ति है।

मनोवैज्ञानिक चित्रण: दुष्यन्त अब शकुन्तला के सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण कर रहा है; उसके मन में आकर्षण क्रमशः गहरा हो रहा है।

नाटकीय महत्त्व:यह पद्य दुष्यन्त के प्रथम-दर्शनजन्य अनुराग को और पुष्ट करता है तथा भावी प्रेम की भूमिका बनाताहै।

रस: शृङ्गार रस की प्रधान अभिव्यक्ति है।

छन्द: मालिनी।

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।।२१।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग *—प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। नाटक के प्रारम्भ में राजा दुष्यन्त मृगया करते हुए एक मृग का पीछा करते-करते महर्षि कण्व के तपोवन के समीप पहुँचते हैं। आश्रम-मृग पर बाण चलाने से वैखानस तपस्वी उन्हें रोकता है। राजा अपने बाण को वापस लेकर आश्रम के प्राणियों की रक्षा करता है। उसके इस धर्मसम्मत आचरण से प्रसन्न होकर तपस्वी उसे आशीर्वाद देता है तथा आश्रम में प्रवेश करने का निमन्त्रण देता है। राजा आश्रम में पहुँचकर वहाँ की शान्त, पवित्र और प्रकृति-संवलित जीवन-पद्धति का निरीक्षण करता है। इसी समय उसकी दृष्टि अनसूया और प्रियंवदा के साथ वृक्षों को सींचती हुई शकुन्तला पर पड़ती है। उसके सहज और अकृत्रिम सौन्दर्य को देखकर राजा अत्यन्त प्रभावित होता है। पहले वह उसके सौन्दर्य को राजमहल के अन्तःपुर तथा वनलताओं के सौन्दर्य से श्रेष्ठ बताता है और फिर उसके वल्कल-वस्त्र की तुलना पीले पत्ते में छिपे हुए पुष्प से करता है। इसके बाद वह अनुभव करता है कि वल्कल भी शकुन्तला की शोभा को कम नहीं करता, क्योंकि जो रूप स्वभावतः ही सुन्दर हो, उसके लिए प्रत्येक वस्तु अलंकार बन जाती है। इसी सौन्दर्य-दर्शन की अगली कड़ी में राजा शकुन्तला के अधर, बाहुओं और अंग-अंग में विकसित नवयौवन का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए प्रस्तुत पद्य कहता है।*

हिन्दी अर्थ*:-इसका अधर नवीन कोमल पल्लव के समान लाल है,दोनों भुजाएँ कोमल वृक्ष-शाखाओं के समान हैं और इसके अंगों में फूल के समान मनोहर नवयौवन विकसित होकर व्याप्त हो रहा है।*

व्याख्या*:- राजा दुष्यन्त शकुन्तला के रूप को देखकर उसके सौन्दर्य के विभिन्न अंगों का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण करता है। उसके अधर की लालिमा उसे नवीन पल्लव के समान दिखाई देती है। उसकी दोनों कोमल भुजाएँ नवांकुरित वृक्ष-शाखाओं के समान सुकुमार एवं लचीली हैं। इसके बाद राजा केवल किसी एक अंग का वर्णन न करके उसके सम्पूर्ण शरीर में विकसित हो रहे नवयौवन को फूल के समान मनोहर बताता है। इस प्रकार कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य को प्रकृति के तीन मनोहर बिम्बों—किसलय, कोमल विटप और कुसुम—के माध्यम से चित्रित किया है। इससे शकुन्तला का रूप केवल सुन्दर ही नहीं, बल्कि सजीव, कोमल, प्राकृतिक और नवयौवन से परिपूर्ण प्रतीत होता है।*

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

प्रकृति-उपमानों का सुन्दर प्रयोग*: अधर के लिए किसलय, बाहुओं के लिए कोमल विटप और यौवन के लिए कुसुम का प्रयोग हुआ है।*

उपमा-अलंकार*: "कुसुममिव" द्वारा नवयौवन की पुष्प से तुलना की गई है।*

रूपकात्मक सौन्दर्य*: शकुन्तला के अंगों को मानो विकसित होती हुई प्राकृतिक लता के विभिन्न अंगों के रूप में देखा गया है।*

सुकुमारता*: "किसलय", "कोमल", "विटप", "कुसुम" जैसे शब्दों के कारण पद्य में अत्यन्त कोमल एवं मधुर पदावली है।*

मनोवैज्ञानिक चित्रण: दुष्यन्त का ध्यान अब शकुन्तला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर केन्द्रित हो चुका है; उसका आकर्षण क्रमशः गहरा हो रहा है।

नाटकीय महत्त्व: यह पद्य दुष्यन्त के प्रथम-दर्शनजन्य शृङ्गार को स्पष्ट करता है और आगे विकसित होने वाले प्रणय की आधारभूमि तैयार करता है।

रस: शृङ्गार रस की प्रधानता है।

छन्द: आर्या।

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं, रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदुकर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं, वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥२४॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग:- महाकवि कालिदास रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथमाङ्क में राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्व-महर्षि के आश्रम में पहुँचते हैं। आश्रम की पवित्रता और प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर वे वहाँ की अहिंसामयी तपोभूमि से प्रभावित होते हैं। इसी आश्रम में उन्हें वृक्षों को सींचती हुई शकुन्तला, अपनी सखियों अनसूया और प्रियंवदा के साथ दिखाई देती है। शकुन्तला के असाधारण सौन्दर्य को देखकर राजा उसके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं और उसके कुल तथा अपने योग्य होने के विषय में विचार करते हुए मन ही मन उसके प्रति अनुराग अनुभव करने लगते हैं।

इसी बीच एक भ्रमर शकुन्तला के मुख के पास मँडराने लगता है। वह भयभीत होकर उसे हटाने का प्रयास करती है। भ्रमर उसके नेत्रों, कान और अधर के समीप बार-बार जाता है। इस दृश्य को देखकर दुष्यन्त के मन में भ्रमर के प्रति ईर्ष्या-मिश्रित हास्यपूर्ण शृङ्गारभाव उत्पन्न होता है। वे भ्रमर को सम्बोधित करके कहते हैं कि वह तो शकुन्तला के अत्यन्त निकट जाकर उन सुखों का अनुभव कर रहा है, जिनकी वास्तविकता जानने में मैं स्वयं अभी तक लगा हुआ हूँ। इसी भाव को व्यक्त करते हुए राजा यह श्लोक कहते हैं। नाट्य-पाठ में इस अवसर पर राजा के "सासूयमिव" भाव का स्पष्ट संकेत है।

हिन्दी अर्थ:- हे भ्रमर! तुम शकुन्तला की भय से काँपती हुई चंचल नेत्रों की दृष्टि को बार-बार स्पर्श कर रहे हो। उसके कान के पास जाकर मानो कोई गुप्त बात कह रहे हो और मधुर गुंजार कर रहे हो। तुम्हें अपने हाथों से हटाने का प्रयत्न करती हुई शकुन्तला के प्रेम के सर्वस्व उसके अधर का रस भी तुम पी रहे हो। हम तो उसके वास्तविक स्वरूप और अपने प्रति उसके भाव को जानने की खोज में ही वंचित रह गए, परन्तु तुम तो सचमुच कृतार्थ हो।

अर्थात्—हे भ्रमर! तुम शकुन्तला की भय से काँपती और चंचल नेत्रों वाली दृष्टि को बार-बार छूते हो; उसके कान के पास मँडराकर मानो कोई रहस्य कहते हुए मधुर गुंजार करते हो; हाथों से तुम्हें हटाने का प्रयत्न करती हुई उसकी प्रेम का सर्वस्व उसके अधर का रस भी पी रहे हो। हम तो वास्तविकता जानने के प्रयत्न में वंचित रह गए, पर तुम सचमुच कृतार्थ हो।

व्याख्या:- दुष्यन्त यहाँ सीधे शकुन्तला से अपने प्रेम का प्रदर्शन नहीं करते, बल्कि भ्रमर को माध्यम बनाकर अपनी ईर्ष्या और अनुराग प्रकट करते हैं। भ्रमर का शकुन्तला के चारों ओर मँडराना उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो वह उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार कर रहा हो। "रहस्याख्यायीव" में भ्रमर का कान के पास धीरे-धीरे गुंजार करना मानो प्रेमी द्वारा प्रियतम के कान में कोई गुप्त बात कहने जैसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार "रतिसर्वस्वमधरम्" कहकर दुष्यन्त शकुन्तला

के अधर को प्रेम-सुख का सर्वस्व बताते हैं। अन्तिम चरण में "वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हताः" कहकर राजा अपने मन की स्थिति प्रकट करते हैं—वे अभी यह निश्चित करने में लगे हैं कि शकुन्तला उनके योग्य है और उसके प्रति उनका आकर्षण उचित है या नहीं; दूसरी ओर भ्रमर बिना किसी संकोच के उसके समीप पहुँच गया है। इसलिए राजा हास्यपूर्ण ईर्ष्या से उसे "कृती"—अर्थात् सफल और कृतार्थ—कहते हैं।

काव्यगत सौन्दर्य

मुख्य रस — शृङ्गार रस, जिसमें दुष्यन्त का अनुराग और ईर्ष्या दोनों व्यक्त हुए हैं।

स्वभावोक्ति का सुन्दर प्रयोग है—भ्रमर का शकुन्तला के मुख, कान और अधर के समीप मँडराना स्वाभाविक दृश्य है; ध्वन्यालोक की परम्परा में भी इस श्लोक के स्वभावोक्ति-अलंकार को रसानुकूल माना गया है।

उपमा — "रहस्याख्यायीव" में भ्रमर की गुंजार की तुलना रहस्य कहने वाले से की गई है।

रूपकात्मक प्रयोग — "रतिसर्वस्वम् अधरम्" में अधर को प्रेम का सर्वस्व कहा गया है। "वयं हताः—त्वं कृती" में राजा और भ्रमर की स्थिति का सुन्दर विरोधाभास है। प्रकृति के एक छोटे-से दृश्य को कवि ने मानवीय प्रेम-भाव से जोड़ दिया है।

नाट्यगत सौन्दर्य

इस पद्य का विशेष नाटकीय महत्त्व है। दुष्यन्त अभी अपने प्रेम को शकुन्तला के सामने स्पष्ट नहीं करते; भ्रमर को सम्बोधित करके अपनी ईर्ष्या और अनुराग व्यक्त करते हैं। इससे उनके अन्तर्मन की स्थिति दर्शकों के सामने स्पष्ट हो जाती है और आगामी प्रेम-विकास की भूमिका तैयार होती है। मूल नाट्यक्रम में इसके तुरंत बाद शकुन्तला भ्रमर से परेशान होकर अपनी सखियों से रक्षा की प्रार्थना करती है और दुष्यन्त को पुकारने की बात आती है।

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नारङ्गयूथो धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः॥३४॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथमाङ्क में राजा दुष्यन्त कण्वाश्रम में शकुन्तला से मिलते हैं। उसके प्रति अनुरक्त होने के बाद जब वे आश्रम में उपस्थित हैं, तभी नेपथ्य से तपस्वियों को सावधान किया जाता है कि मृगया-विहारी राजा दुष्यन्त निकट आ पहुँचे हैं। उनके रथ को देखकर भयभीत एक जंगली हाथी आश्रम में प्रवेश कर जाता है और अपने मार्ग में वृक्षों तथा मृगों को अस्त-व्यस्त करता है। उसी हाथी की भयंकर दशा और उससे आश्रम की तपस्या को होने वाले विघ्न का वर्णन इस श्लोक में किया गया है।

अर्थ:- रथ को देखकर भयभीत वह हाथी तीव्र आघात से वृक्ष के तने से टकराया है, जिससे उसका एक दाँत उसमें फँस गया है। पैरों से खींची गई लताओं के समूह के लिपट जाने से उसके पैरों में बन्धन-सा बन गया है और उसने मृगों के झुण्ड को तितर-बितर कर दिया है। ऐसा हाथी मानो हमारी तपस्या का साक्षात् शरीरधारी विघ्न बनकर इस पवित्र तपोवन में प्रवेश कर रहा है।

व्याख्या:- रथ के भय से उन्मत्त हाथी की वेगपूर्ण और अस्त-व्यस्त अवस्था का चित्रण हुआ है। उसकी गति से वृक्षों को क्षति पहुँचती है, लताएँ उसके पैरों में उलझ जाती हैं और मृगों के झुण्ड बिखर जाते हैं। इसलिए तपस्वियों को वह उनकी तपस्या में बाधा डालने वाला साक्षात् विघ्न प्रतीत होता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

1.उत्प्रेक्षा अलंकार—हाथी को तपस्या का "मूर्त विघ्न" माना गया है।

2.हाथी की विक्षुब्ध गति का सजीव दृश्य-चित्रण हुआ है।

3.भयानक रस की अभिव्यक्ति है।

4.नाटकीय दृष्टि से यह पद्य आश्रम की शान्ति में उत्पन्न अचानक संकट और भय को प्रभावशाली बनाता है।

3.अभिज्ञान शाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक

प्रश्न- अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थाङ्क का वैशिष्ट्य प्रस्तुत कीजिए-

उत्तर- अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थाङ्क का वैशिष्ट्य

प्रस्तावना

महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' प्रेम, प्रकृति, मानवीय संवेदना और नियति के अद्भुत समन्वय का विश्वविख्यात संस्कृत नाटक है। इसके प्रथमाङ्क में राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्व के तपोवन में पहुँचते हैं और वहीं शकुन्तला को देखकर उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। द्वितीयाङ्क में दोनों के मध्य प्रेम का आकर्षण क्रमशः दृढ़ होता है। तृतीयाङ्क में यह प्रेम परिपक्व होकर गान्धर्व-विवाह का रूप धारण करता है; किन्तु परिस्थितिवश दुष्यन्त को राजधानी लौटना पड़ता है और शकुन्तला उसके आगमन की प्रतीक्षा में रहती है।

यहीं से नाटक के सुखद प्रेम-प्रवाह में नियति एक करुण मोड़ उपस्थित करती है। दुष्यन्त के चिन्तन में निमग्न शकुन्तला महर्षि दुर्वासा के आश्रमागमन को नहीं जान पाती। क्रुद्ध दुर्वासा उसे शाप देते हैं कि जिसके चिन्तन में वह निमग्न है, वही दुष्यन्त उसे भूल जाएगा। अनसूया की प्रार्थना पर शाप का परिहार इस प्रकार किया जाता है कि दुष्यन्त की दी हुई मुद्रिका को देखकर उसकी स्मृति लौट आएगी।

चतुर्थाङ्क में इसी शाप के कारण उत्पन्न होने वाली करुण परिणति की भूमिका तैयार होती है। कण्व को शकुन्तला के विवाह और उसके गर्भवती होने का समाचार प्राप्त होता है। वे उसे पति के घर भेजने का निर्णय करते हैं। इसके साथ ही आश्रम की वह पुत्री, जिसे कण्व ने स्नेह से पाला था और जो वन-लताओं, मृगों तथा सखियों के बीच बड़ी हुई थी, अब अपने प्रिय आश्रम को छोड़कर पति के गृह की ओर प्रस्थान करती है। इस प्रकार चतुर्थाङ्क प्रेम की कथा को वियोग और करुणा की दिशा में मोड़ने वाला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संधि-बिन्दु है।

चतुर्थाङ्क की प्रमुख विशेषताएँ

*1. **करुण रस की चरम अभिव्यक्ति**: - चतुर्थाङ्क का सर्वाधिक प्रमुख वैशिष्ट्य इसकी हृदयस्पर्शी करुणा है। शकुन्तला की विदाई के समय कण्व, गौतमी, अनसूया, प्रियंवदा और सम्पूर्ण तपोवन का वातावरण शोकमग्न हो उठता है। यहाँ करुणा केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि आश्रम के वृक्ष, लताएँ और मृग भी शकुन्तला से आत्मीय सम्बन्ध रखते हुए प्रतीत होते हैं। इसी कारण यह अङ्क पाठक और दर्शक के हृदय पर अत्यन्त गहरा प्रभाव डालता है।*

*2. **कण्व का वात्सल्य-भाव**: - इस अङ्क में कण्व का चरित्र विशेष रूप से उज्ज्वल होकर सामने आता है। वे केवल तपस्वी अथवा आश्रमाध्यक्ष नहीं, बल्कि एक स्नेहमय पिता हैं। पुत्री को विदा करते समय उनका हृदय विह्वल*

है, फिर भी वे अपने व्यक्तिगत दुःख को संयमित करके शकुन्तला को उसके भावी गृहस्थ जीवन के लिए उचित उपदेश देते हैं। इस प्रकार कालिदास ने कण्व में वात्सल्य और धर्मबुद्धि का अद्भुत समन्वय किया है।

3. शकुन्तला का मार्मिक विदा-दृश्य:-शकुन्तला का तपोवन से प्रस्थान इस अङ्क का प्राण है। जिस आश्रम में उसका बाल्य बीता, जिसके वृक्षों और मृगों से उसका आत्मीय सम्बन्ध रहा, उसी को छोड़कर जाना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। वह बार-बार पीछे मुड़कर देखती है और उसके कदम आगे बढ़ने में मानो संकोच करते हैं। इस दृश्य में वियोग की पीड़ा और मातृ-पितृ-सदृश आश्रम से बिछुड़ने का भाव अत्यन्त स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

4. प्रकृति और मानव का तादात्म्य: - कालिदास की प्रकृति-चित्रण-कला का सर्वोत्तम उदाहरण भी इसी अङ्क में मिलता है। शकुन्तला के जाने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो सम्पूर्ण तपोवन ही उससे बिछुड़ रहा हो। वृक्ष उसके लिए विदाई-उपहार देते हैं, मृग उसके प्रति स्नेह प्रकट करते हैं और आश्रम का प्रत्येक अंश उसके जीवन से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। यहाँ प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि नाटक की संवेदनशील पात्र-सदृश शक्ति बन जाती है।

5. स्त्री-जीवन और गृहस्थ-धर्म का चित्रण: - कण्व शकुन्तला को पति के घर में बड़ों का सम्मान करने, सह-पत्नियों के प्रति सौहार्द रखने, पति के प्रति प्रियभाव रखने तथा सेवकों के प्रति उदार रहने का उपदेश देते हैं। इन उपदेशों में तत्कालीन गृहस्थ-जीवन के आदर्शों और सामाजिक मर्यादाओं का चित्रण मिलता है।

6.कथानक की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्क: - यह अङ्क केवल भावुक विदाई का दृश्य नहीं है; इसके भीतर सम्पूर्ण आगामी कथा का बीज निहित है। दुर्वासा का शाप, मुद्रिका द्वारा स्मृति की पुनर्प्राप्ति की व्यवस्था और शकुन्तला का राजगृह की ओर प्रस्थान आगे आने वाले संघर्ष का आधार बनते हैं। अतः चतुर्थाङ्क नाटक की भाव-योजना के साथ-साथ कथानक-योजना में भी निर्णायक भूमिका निभाता है।

7. नाटकीय एवं काव्यगत सौन्दर्य: - इस अङ्क में संवाद, भावाभिनय, प्रकृति-चित्रण और मार्मिक प्रसंगों का अत्यन्त कलात्मक संयोजन है। विशेषतः विदाई के प्रसंग में कालिदास ने शब्दों की अपेक्षा वातावरण और संकेतों के माध्यम से भावों को व्यक्त किया है। यही इसकी नाटकीय शक्ति है। विद्वत्-आलोचना में भी चतुर्थाङ्क को कालिदास की काव्यप्रतिभा और नाटकीय कौशल की विशेष उपलब्धि माना गया है।

उपसंहार

इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् का चतुर्थाङ्क प्रेम से वियोग की ओर संक्रमण का अङ्क है। इसमें दुर्वासा के शाप से उत्पन्न भावी विपत्ति की भूमिका, कण्व का वात्सल्य, शकुन्तला की विदाई, सखियों का स्नेह और प्रकृति का मानवीकरण—सभी मिलकर करुणा का अत्यन्त प्रभावशाली वातावरण निर्मित करते हैं। यदि प्रथम तीन अङ्क प्रेम के विकास की कथा हैं, तो चतुर्थाङ्क उस प्रेम की परीक्षा के प्रारम्भ का संकेत देता है। यही कारण है कि चतुर्थाङ्क अभिज्ञानशाकुन्तलम् का हृदयस्पर्शी, भावप्रधान और नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्क माना जाता है

प्रश्न- 'काव्येषु नाटकं रम्यं' उक्ति की समीक्षा कीजिए-

उत्तर- 'काव्येषु नाटकं रम्यं' उक्ति की समीक्षा

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में नाटक को काव्य की अत्यन्त प्रभावशाली विधा माना गया है। इसमें काव्य की रसात्मकता और भाव-सौन्दर्य के साथ अभिनय, संवाद, संगीत तथा दृश्यता का भी समन्वय होता है। इसी कारण नाटक सहृदय के हृदय पर प्रत्यक्ष और व्यापक प्रभाव डालता है। महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' संस्कृत नाट्य-साहित्य की इसी चरम उपलब्धि का प्रतिनिधि है। प्रेम, प्रकृति, मानवीय संवेदना, करुणा, हास्य, शृङ्गार और नाटकीय कौतूहल का जैसा कलात्मक समन्वय इसमें मिलता है, वैसा संस्कृत नाट्य-साहित्य में विरल है। नाटक की इसी अप्रतिम रमणीयता को यह प्रसिद्ध उक्ति अत्यन्त सारगर्भित रूप में व्यक्त करती है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

अर्थात्—काव्यों में नाटक रमणीय है, नाटकों में 'शकुन्तला' रमणीय है, 'शकुन्तला' में भी चतुर्थाङ्क रमणीय है और चतुर्थाङ्क में भी चार श्लोक विशेष रूप से रमणीय हैं। यह उक्ति कालिदास की काव्य-प्रतिभा के क्रमिक उत्कर्ष को सूचित करती है। NCERT की संस्कृत साहित्य-सामग्री में भी इसी परम्परा का उल्लेख करते हुए चतुर्थाङ्क और उसके चार श्लोकों को श्रेष्ठ माना गया है।

***1. 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' — नाटक की रमणीयता**: - नाटक में कथा केवल वर्णित नहीं होती, बल्कि दृश्य रूप में घटित होती हुई प्रतीत होती है। पात्र स्वयं अपने भावों को व्यक्त करते हैं; उनके संवाद, अभिनय, हाव-भाव और परिस्थितियाँ दर्शक को कथा के भीतर ले जाती हैं।*

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में भी प्रेम का अंकुरण, उसका विकास, गान्धर्व-विवाह, दुर्वासा का शाप, वियोग, अभिज्ञान और अन्ततः पुनर्मिलन—इन सभी घटनाओं का ऐसा क्रम है कि सहृदय निरन्तर कथा से जुड़ा रहता है।

***2. 'तत्र रम्या शकुन्तला' — नाटकों में शकुन्तला की श्रेष्ठता**: - 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की रमणीयता का केन्द्र स्वयं शकुन्तला है। वह केवल रूपवती नायिका नहीं, बल्कि सौन्दर्य, सरलता, प्रेम, लज्जा, करुणा, वात्सल्य और त्याग का समन्वित रूप है। प्रथमाङ्क की वनकन्या शकुन्तला जब प्रेम में पड़ती है, तो उसका सहज लज्जाभाव और भावुकता सामने आती है; तृतीयाङ्क में प्रेमिका का रूप विकसित होता है और चतुर्थाङ्क में वही शकुन्तला पुत्री और भावी गृहिणी के रूप में दिखाई देती है। इस चरित्र-विकास ने उसे संस्कृत नाट्य-साहित्य की अमर नायिका बना दिया है।*

***3. 'तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः' — चतुर्थाङ्क की श्रेष्ठता**: - चतुर्थाङ्क में नाटक की भावधारा अपने अत्यन्त मार्मिक शिखर पर पहुँचती है। शकुन्तला को पतिगृह भेजने का समय आ गया है। जिस आश्रम में उसने बाल्यकाल बिताया, उसके वृक्षों, लताओं और मृगों से उसका आत्मीय सम्बन्ध है। अतः उसका प्रस्थान केवल एक कन्या की विदाई नहीं, बल्कि सम्पूर्ण आश्रम-जीवन से उसके वियोग का प्रसंग बन जाता है। कण्व का वात्सल्य, सखियों का स्नेह, शकुन्तला की करुण स्थिति और प्रकृति का मानवीकरण—इन सबके कारण चतुर्थाङ्क में करुण रस और वात्सल्य-भाव का अद्भुत उत्कर्ष दिखाई देता है।*

***4. 'तत्र श्लोकचतुष्टयम्' — चार श्लोकों की अनुपम रमणीयता**: - इस उक्ति का चरम सौन्दर्य उन चार प्रसिद्ध श्लोकों में निहित है। दक्षिण भारतीय पण्डित-परम्परा में इन्हें चतुर्थाङ्क के 6, 9, 17 और 18वें श्लोक के रूप में स्वीकार किया गया है।*

(क) कण्व का वात्सल्य — "यास्यत्यद्य शकुन्तलेति..."

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः, पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥6॥

इस श्लोक में कण्व के पितृ-वात्सल्य की चरम अभिव्यक्ति हुई है। "आज शकुन्तला चली जाएगी"—यह विचार ही उनके हृदय को उत्कण्ठा से भर देता है। आँसुओं के कारण गला रुंध जाता है और चिन्ता से दृष्टि जड़ हो जाती है। विशेष बात यह है कि कण्व स्वयं वनवासी तपस्वी हैं, फिर भी पुत्री-वियोग उन्हें इतना व्याकुल कर देता है कि वे सोचते हैं—यदि मुझे, एक विरक्त आश्रमवासी को, पुत्री-वियोग इतना पीड़ित कर रहा है, तो गृहस्थ माता-पिता की दशा क्या होती होगी? इस एक श्लोक में वात्सल्य, करुणा और मानवीय संवेदना का अद्भुत समन्वय है।

(ख) प्रकृति और शकुन्तला का तादात्म्य — "पातुं न प्रथमं व्यवस्यति..."

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः, सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥9॥

यहाँ कण्व आश्रम के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए शकुन्तला की प्रकृति-प्रेमपूर्ण प्रवृत्तियों का स्मरण करते हैं। जो शकुन्तला वृक्षों को जल पिलाए बिना स्वयं जल ग्रहण नहीं करती थी, जो आभूषणों की इच्छुक होने पर भी स्नेहवश उनके कोमल पत्ते नहीं तोड़ती थी और जिन वृक्षों में पहली बार फूल आने पर उत्सव मनाती थी—वही आज पतिगृह जा रही है।

इस श्लोक में कालिदास ने मानव और प्रकृति के अभिन्न सम्बन्ध को अत्यन्त कोमल ढंग से चित्रित किया है। प्रकृति यहाँ निर्जीव पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि शकुन्तला की आत्मीय सहचरी बन गई है।

(ग) दुष्यन्त के लिए कण्व का संदेश — "अस्मान् साधु विचिन्त्य..."

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्यास्त्वया,भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः॥17॥

इस श्लोक में कण्व का उदार, मर्यादित और दूरदर्शी पितृहृदय दिखाई देता है। वे दुष्यन्त को स्मरण कराते हैं कि शकुन्तला के सम्बन्ध में उनके आश्रम की तपस्या, अपने कुल की गरिमा और शकुन्तला के स्वाभाविक प्रेम को ध्यान में रखते हुए उसके साथ अपनी अन्य पत्नियों के समान न्यायपूर्ण व्यवहार करना। अन्तिम चरण में कण्व का संयम विशेष उल्लेखनीय है—इसके आगे जो कुछ होगा, वह भाग्य के अधीन है; वधू के सम्बन्धियों को उससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहिए। यहाँ पितृ-स्नेह के साथ आत्मसम्मान, मर्यादा और धर्मबुद्धि का अद्भुत समन्वय है।

(घ) शकुन्तला के लिए आदर्श गृहस्थ-जीवन का उपदेश — "शुश्रूषस्व गुरून्..."

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने, भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥18॥

यह श्लोक चतुर्थाङ्क के नैतिक और सामाजिक सौन्दर्य का प्रतिनिधि है। कण्व शकुन्तला को गृहस्थ जीवन के लिए शिक्षा देते हैं—गुरुजनों की सेवा करो, सपत्नियों के प्रति सखी जैसा व्यवहार रखो, पति के प्रतिकूल परिस्थिति में भी क्रोधवश विरोध मत करो, परिजनों के प्रति उदार रहो और अपने सौभाग्य पर अहंकार मत करो। इस प्रकार कालिदास

ने एक आदर्श गृहिणी के कर्तव्य, विनय, सहिष्णुता, सेवा और उदारता को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। यह केवल शकुन्तला को दिया गया उपदेश नहीं, बल्कि तत्कालीन गृहस्थ-जीवन की आदर्श मर्यादा का काव्यात्मक निरूपण है।

5. चारों श्लोकों में सौन्दर्य का क्रमिक विकास: - इन चारों श्लोकों को साथ रखकर देखने पर कालिदास की अद्भुत रचना-कुशलता सामने आती है— "पहले श्लोक में पिता का हृदय रोता है, दूसरे में प्रकृति शकुन्तला से विदा लेती है, तीसरे में पिता दुष्यन्त को अपना नैतिक दायित्व स्मरण कराता है और चौथे में शकुन्तला को गृहस्थ-जीवन का आदर्श मार्ग दिखाया जाता है"। अर्थात् इन चार श्लोकों में वात्सल्य ⟶ प्रकृति-स्नेह ⟶ दाम्पत्य-मर्यादा ⟶ गृहस्थ-धर्म की भावयात्रा दिखाई देती है। यही इनकी सामूहिक कलात्मकता है।

निष्कर्ष

अतः "काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला। तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥" उक्ति को केवल प्रशंसात्मक कथन मानना उचित नहीं है। यह 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के क्रमशः उत्कर्षमान सौन्दर्य का सूक्ष्म मूल्यांकन है। नाटक की दृश्यता और अभिनेयता से लेकर शकुन्तला के चरित्र-सौन्दर्य तक, चतुर्थाङ्क की करुण-मार्मिकता से लेकर इन चार श्लोकों के वात्सल्य, प्रकृति-प्रेम, दाम्पत्य-मर्यादा और गृहस्थ-धर्म तक—कालिदास की प्रतिभा निरन्तर ऊँचाई प्राप्त करती जाती है। इसीलिए यह उक्ति अन्ततः कालिदास के नाट्य-कौशल और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की अनुपम रमणीयता की अत्यन्त सार्थक समीक्षा सिद्ध होती है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक (प्रमुख श्लोकों की व्याख्या)

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥१॥

वक्ता — महर्षि दुर्वासा (नेपथ्य से)।

सन्दर्भ-प्रसंग: - महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में दुष्यन्त से गान्धर्व-विवाह के पश्चात् शकुन्तला उसके विरह में तन्मय रहती है। इसी बीच आश्रम में पधारे महर्षि दुर्वासा का वह अनजाने में अतिथि-सत्कार नहीं कर पाती। क्रुद्ध दुर्वासा उसे शाप देते हैं कि जिस दुष्यन्त के चिन्तन में वह निमग्न है, वही उसे भूल जाएगा। प्रस्तुत पद्य में महर्षि दुर्वासा नेपथ्य से उसी शाप को व्यक्त करते हैं।

अर्थ: - जिस दुष्यन्त का एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करती हुई तुम यहाँ उपस्थित मुझ तपस्वी को भी नहीं जान पा रही हो, वही दुष्यन्त स्मरण कराए जाने पर भी तुम्हें उसी प्रकार भूल जाएगा, जैसे कोई प्रमत्त व्यक्ति पहले कही हुई बात को भूल जाता है।

व्याख्या: - शकुन्तला का मन दुष्यन्त के प्रेम में पूर्णतः निमग्न है। इसी प्रेम-तन्मयता के कारण वह आश्रम में पधारे महर्षि दुर्वासा के अतिथि-सत्कार का भी ध्यान नहीं रख पाती। अपने इस अनादर से क्रुद्ध होकर दुर्वासा उसे शाप देते हैं कि जिस दुष्यन्त के चिन्तन में डूबी हुई तुम मेरी उपस्थिति तक को नहीं जानती, वही दुष्यन्त तुम्हें भूल जाएगा। दुर्वासा शाप की तीव्रता को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि किसी के द्वारा दुष्यन्त को शकुन्तला का स्मरण कराए जाने पर भी वह उसे याद नहीं करेगा। उसका यह विस्मरण ऐसा होगा, जैसे कोई प्रमत्त व्यक्ति पहले कही हुई बात को भी भूल

जाता है। इस प्रकार शकुन्तला की प्रेम-तन्मयता, जो अब तक उसके प्रेम की मधुर अभिव्यक्ति थी, आगे चलकर उसके वियोग का कारण बन जाती है। यह शाप नाटक के कथानक में निर्णायक मोड़ है। इसी के कारण दुष्यन्त आगे चलकर शकुन्तला को पहचान नहीं पाता और नाटक का प्रेम-प्रवाह विप्रलम्भ-शृङ्गार तथा करुणा की ओर अग्रसर होता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस एवं भाव — शकुन्तला की दुष्यन्त-विषयक रति के भावी वियोग की भूमिका यहाँ निर्मित होती है; अतः विप्रलम्भ-शृङ्गार की पूर्वपीठिका अत्यन्त प्रभावपूर्ण है।

अलंकार — "कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव" में उपमा का सुन्दर प्रयोग है। दुष्यन्त के भावी विस्मरण की तुलना प्रमत्त व्यक्ति द्वारा पूर्वकथित बात के विस्मरण से की गई है।

नाटकीय सौन्दर्य — दुर्वासा का शाप नेपथ्य से सुनाया गया है। इससे घटना में आकस्मिकता और भावी घटनाओं के प्रति कौतूहल दोनों उत्पन्न होते हैं।

कथानकगत महत्त्व — यही शाप आगे दुष्यन्त के विस्मरण और अभिज्ञान-मुद्रिका द्वारा उसकी स्मृति लौटने की घटनाओं का आधार बनता है।

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम् आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥२॥

वक्ता — कण्व का शिष्य।

सन्दर्भ-प्रसंग: - महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में कण्व शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजने की तैयारी कर रहे हैं। प्रातःकाल का समय जानने के लिए कण्व का शिष्य बाहर आता है। वह देखता है कि एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल की ओर जा रहा है और दूसरी ओर अरुण के आगे-आगे सूर्य उदित हो रहा है। प्रस्तुत पद्य में शिष्य इसी चन्द्रास्त और सूर्योदय के मनोहर दृश्य का वर्णन करता है तथा उसके माध्यम से संसार की परिवर्तनशीलता का संकेत देता है।

अर्थ: - एक ओर औषधियों के स्वामी चन्द्रमा अस्ताचल के शिखर की ओर जा रहे हैं और दूसरी ओर अरुण को आगे किए हुए सूर्य उदित हो रहा है। इन दोनों प्रकाशमान ज्योतियों के एक साथ अस्त और उदय होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो संसार अपनी विभिन्न अवस्थाओं में सुख-दुःख तथा उत्थान-पतन के नियम से संचालित हो रहा हो।

व्याख्या: - प्रस्तुत पद्य में चतुर्थाङ्क के आरम्भ का अत्यन्त मनोरम प्रभात-दृश्य अंकित हुआ है। रात्रि समाप्त हो रही है। पश्चिम दिशा में चन्द्रमा अस्ताचल की ओर जा रहा है और उसी समय पूर्व दिशा में अरुणोदय के साथ सूर्य प्रकट हो रहा है। एक ज्योति का अवसान और दूसरी ज्योति का उदय—यह दृश्य प्रकृति के निरन्तर परिवर्तनशील क्रम को व्यक्त करता है। कालिदास की विशेषता यह है कि वे इस प्राकृतिक घटना को केवल दृश्य-सौन्दर्य तक सीमित नहीं रखते। चन्द्रमा और सूर्य के युगपत् व्यसन तथा उदय में उन्हें संसार की व्यापक जीवन-व्यवस्था का संकेत दिखाई देता है। एक का अस्त होना दूसरे के उदय का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः संसार में सुख-दुःख, उत्थान-पतन, लाभ-हानि तथा संयोग-वियोग भी इसी प्रकार क्रमशः आते-जाते रहते हैं। चतुर्थाङ्क के प्रसंग में यह भाव विशेष अर्थपूर्ण है। बाहर प्रकृति में चन्द्रास्त और सूर्योदय का संक्रमण हो रहा है और कथा में भी शकुन्तला के जीवन की एक अवस्था समाप्त होकर

दूसरी अवस्था प्रारम्भ होने वाली है—आश्रम का सुखमय जीवन पीछे छूट रहा है और पतिगृह-गमन का नया जीवन सामने उपस्थित है। इस प्रकार प्रकृति-वर्णन के भीतर कालिदास ने जीवन की परिवर्तनशीलता का सूक्ष्म संकेत भी रख दिया है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

प्रकृति-चित्रण — चन्द्रास्त और सूर्योदय का अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोहर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

उपमा/उत्प्रेक्षात्मक सौन्दर्य — "लोको नियम्यत इव" में संसार के विभिन्न अवस्थाओं में संचालित होने की कल्पना अत्यन्त प्रभावशाली है।

द्वन्द्वात्मक योजना — चन्द्रास्त–सूर्योदय तथा व्यसन–उदय के विरोधी भावों का समानान्तर विन्यास पद्य को विशेष सौन्दर्य प्रदान करता है।

दार्शनिक संकेत — प्राकृतिक घटना के माध्यम से संसार की परिवर्तनशीलता तथा सुख-दुःख के क्रम का सूक्ष्म संकेत किया गया है।

नाट्यगत सौन्दर्य — चतुर्थाङ्क के आरम्भ में यह प्रभात-वर्णन आगे आने वाले शकुन्तला के प्रस्थान के लिए शांत, गम्भीर और भावपूर्ण वातावरण निर्मित करता है।

छन्द — पद्य वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध है।

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं,निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसःकेनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितैः दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥५॥

वक्ता — कण्व का शिष्य।

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला के पतिगृह-प्रस्थान की तैयारी हो रही है। कण्व के शिष्य ने प्रातःकाल का दृश्य देखा और अब वह शकुन्तला को विदा करने के लिए आश्रम की ओर लौट रहा है। तभी वह देखता है कि आश्रम के वृक्ष मानो शकुन्तला के प्रति अपने स्नेह के कारण स्वयं उसे विदाई-उपहार दे रहे हैं। प्रस्तुत पद्य में वह वृक्षों द्वारा शकुन्तला को प्रदान किए गए वस्त्र, महावर और आभूषणों का अत्यन्त मनोहर वर्णन करता है।

अर्थ:- किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान श्वेत और कोमल मांगलिक रेशमी वस्त्र प्रदान किया है; किसी ने पैरों में लगाने योग्य महावर का लाल रस दिया है। अन्य वृक्षों ने अपनी पर्व-सन्धियों से निकले हुए, नवीन पल्लवों के समान सुन्दर वनदेवताओं के हाथों द्वारा शकुन्तला को आभूषण प्रदान किए हैं।

व्याख्या:- शकुन्तला ने अपने आश्रम-जीवन में वृक्षों को केवल सींचा ही नहीं, बल्कि उन्हें अपने आत्मीय जनों के समान प्रेम किया था। वह स्वयं भी कह चुकी है कि वृक्षों की सेवा केवल कण्व की आज्ञा के कारण नहीं, बल्कि उनमें उसके सहोदर-स्नेह के कारण है। अब जब वही शकुन्तला पतिगृह जा रही है, तब आश्रम के वृक्ष भी मानो उसके इस प्रेम का प्रत्युपकार कर रहे हैं। किसी वृक्ष ने उसके लिए चन्द्रमा के समान श्वेत रेशमी वस्त्र प्रस्तुत किया है, किसी ने चरणों को सुशोभित करने के लिए लाल लाक्षारस दिया है और अन्य वृक्षों ने अपने नवपल्लवों के समान कोमल हाथों से मानो आभूषण प्रदान किए हैं। यहाँ जड़ वृक्षों को चेतन और स्नेहशील बना देना कालिदास की प्रकृति-मानवीकरण-

कला की अद्भुत विशेषता है। इस दृश्य में प्रकृति और मनुष्य का ऐसा आत्मीय तादात्म्य स्थापित हुआ है कि शकुन्तला की विदाई केवल आश्रमवासियों का दुःख नहीं रह जाती; सम्पूर्ण वन-प्रकृति उसकी विदाई में सहभागी बन जाती है। इसीलिए यह प्रसंग चतुर्थाङ्क की करुणता को अत्यन्त मधुर और अलौकिक सौन्दर्य प्रदान करता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

अद्भुत रस — जड़ वृक्षों द्वारा वस्त्र और आभूषण प्रदान करने की कल्पना आश्चर्य उत्पन्न करती है। चतुर्थाङ्क में इस प्रसंग को अद्भुत-भाव की अभिव्यक्ति से जोड़ा गया है।

मानवीकरण — वृक्षों को स्नेह करने, उपहार देने और विदाई में सहभागी होने वाले चेतन प्राणियों के रूप में चित्रित किया गया है।

उपमा — वस्त्र के लिए "इन्दुपाण्डु" तथा आभूषणों के लिए नवीन किसलयों से स्पर्धा करने वाले हाथों की कल्पना अत्यन्त रमणीय है।

प्रकृति-मानव तादात्म्य — शकुन्तला ने जिन वृक्षों को स्नेह दिया था, वे ही अब उसे विदाई-उपहार दे रहे हैं; यह उसके प्रेम का प्रकृति द्वारा प्रत्युपकार है।

नाटकीय सौन्दर्य — विदाई के करुण प्रसंग से ठीक पहले यह अलौकिक दृश्य वातावरण में करुणा के साथ कोमलता और आश्चर्य का समन्वय करता है।

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया, कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः,पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥६॥

वक्ता — महर्षि कण्व।

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में दुष्यन्त से विवाह के पश्चात् शकुन्तला को उसके पति के घर भेजने की तैयारी हो रही है। आश्रम के वृक्ष भी उसे विदाई-उपहार दे रहे हैं। अब शकुन्तला के प्रस्थान का समय निकट देखकर कण्व का हृदय पुत्री-वियोग की आशंका से व्याकुल हो उठता है। प्रस्तुत पद्य में वे अपने वात्सल्यजनित दुःख को व्यक्त करते हुए विचार करते हैं कि जब एक वनवासी तपस्वी की यह दशा है, तो पुत्री-वियोग से गृहस्थ माता-पिता की दशा कैसी होती होगी।

अर्थ:- "आज शकुन्तला चली जाएगी"—इस विचार मात्र से मेरा हृदय उत्कण्ठा से व्याकुल हो उठा है, गला रुके हुए आँसुओं से भर गया है और चिन्ता के कारण मेरी दृष्टि जड़ हो गई है। "जब स्नेह के कारण मुझ जैसे वनवासी की यह दशा हो रही है, तब पुत्री के नवीन वियोग से गृहस्थ माता-पिता भला कैसे पीड़ित न होते होंगे?"

व्याख्या:-प्रस्तुत पद्य में कण्व के हृदय में उमड़ते हुए पितृ-स्नेह और पुत्री-वियोग की व्यथा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण हुआ है। शकुन्तला के पतिगृह जाने का समय आ गया है। यह विचार कि "आज शकुन्तला चली जाएगी", कण्व के हृदय को उत्कण्ठा से भर देता है। वे अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आँसुओं के वेग से उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया है और चिन्ता के कारण उनकी दृष्टि भी जड़ हो गई है।

कण्व स्वयं अरण्यवासी तपस्वी हैं और संसार के सांसारिक मोह से अपेक्षाकृत दूर हैं। फिर भी शकुन्तला के प्रति उनके गहन स्नेह के कारण उनका हृदय इतना व्याकुल हो उठा है। इसी से वे अनुमान करते हैं कि जिन गृहस्थों का

जीवन ही पुत्र-पुत्रियों के स्नेह से घिरा रहता है, उनकी पुत्री के वियोग का दुःख कितना अधिक और असहनीय होता होगा। इस प्रकार कण्व का व्यक्तिगत दुःख एक व्यापक सार्वभौम वात्सल्य-अनुभूति का रूप ले लेता है। कालिदास ने पिता के हृदय की सूक्ष्मतम संवेदना को बिना किसी कृत्रिमता के अत्यन्त मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस — यहाँ करुण रस का अत्यन्त मार्मिक परिपाक हुआ है; उसका आधार कण्व का गहन वात्सल्य-भाव है।

भावचित्रण — "कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः" और "चिन्ताजडं दर्शनम्" में आँसुओं से अवरुद्ध कण्ठ तथा चिन्ता से जड़ दृष्टि द्वारा आन्तरिक पीड़ा का सजीव चित्रण हुआ है।

अर्थान्तरन्यास — अपने दुःख को आधार बनाकर कण्व गृहस्थों के पुत्री-वियोग की अधिक पीड़ादायक स्थिति की सामान्य स्थापना करते हैं।

नाटकीय सौन्दर्य — शकुन्तला की विदाई से ठीक पहले कण्व की यह भावावस्था आगामी विदाई-दृश्य को अत्यन्त मार्मिक बनाने वाली भूमिका तैयार करती है।

छन्द — यह पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में है।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या, नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः, सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥९॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में राजा दुष्यन्त से गान्धर्व-विवाह के पश्चात् शकुन्तला को उसके पति के घर भेजने की तैयारी होती है। दुष्यन्त के विरह में निमग्न शकुन्तला को महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण भविष्य में दुष्यन्त द्वारा विस्मृत होने का संकट भी उपस्थित है। कण्व अपनी पुत्री के समान प्रिय शकुन्तला को पति-गृह भेजने से पूर्व उसे मंगलाशीर्वाद देते हैं। इसी विदाई-समय कण्व की दृष्टि आश्रम के उन वृक्षों की ओर जाती है, जिनकी शकुन्तला ने सदैव पुत्रीवत् सेवा की थी। वह पहले वृक्षों को जल पिलाती थी, उनके प्रति स्नेहवश उनके पल्लव नहीं तोड़ती थी और उनके प्रथम पुष्पित होने पर उत्सव मनाती थी। शकुन्तला के इसी प्रकृति-स्नेह को स्मरण करके कण्व आश्रम के वृक्षों से उसकी विदाई की अनुमति देने के लिए कहते हैं। इसी भाव की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद्य में हुई है।

अर्थ:- जो शकुन्तला तुम लोगों के जल पी लेने से पहले स्वयं जल पीने का विचार नहीं करती थी, जो आभूषणों की प्रेमी होते हुए भी तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण तुम्हारे नवीन पत्तों को नहीं तोड़ती थी और तुम्हारे पहली बार फूलने के समय जिसे उत्सव जैसा आनन्द होता था—वही यह शकुन्तला अब पति के घर जा रही है। अतः तुम सभी उसे जाने की अनुमति दो।

व्याख्या:- प्रस्तुत पद्य में कण्व शकुन्तला के प्रति आश्रम के वृक्षों के आत्मीय सम्बन्ध को स्मरण करते हुए उनसे उसकी विदाई की अनुमति माँगते हैं। शकुन्तला के लिए ये वृक्ष केवल वनस्पतियाँ नहीं, बल्कि उसके परिवार के सदस्यों के समान हैं। वह पहले उन्हें जल पिलाती थी और उसके बाद स्वयं जल ग्रहण करती थी। अपने श्रृंगार के लिए पल्लव ग्रहण करने की स्वाभाविक इच्छा होते हुए भी वह वृक्षों के प्रति प्रेम के कारण उनके कोमल नवीन पत्तों को नहीं तोड़ती थी। इससे उसके सेवाभाव, संयम, करुणा और प्रकृति-प्रेम का परिचय मिलता है। कण्व शकुन्तला के वृक्षों से इस

आत्मीय सम्बन्ध को एक और मार्मिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं—जब आश्रम के वृक्ष पहली बार फूलों से भर जाते थे, तब शकुन्तला के लिए वह अवसर किसी उत्सव से कम नहीं होता था। अतः अब जब वही शकुन्तला पति के घर जा रही है, तो कण्व मानो समस्त तपोवन को उसकी विदाई में सहभागी बनाते हैं। 'सर्वैरनुज्ञायताम्' में यही भाव अत्यन्त मार्मिक रूप से व्यक्त हुआ है कि शकुन्तला को केवल मनुष्यों से ही नहीं, बल्कि उसके प्रिय वृक्षों से भी विदाई की अनुमति प्राप्त हो।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: प्रधानतः करुण रस, जिसके भीतर शकुन्तला के प्रति वात्सल्य एवं स्नेह की भावधारा प्रवाहित है।

अलंकार: वृक्षों को मानवीय संवेदनाओं से युक्त मानकर उनसे शकुन्तला की विदाई की अनुमति माँगना मानवीकरण की अत्यन्त सुन्दर योजना है।

प्रकृति-चित्रण: शकुन्तला और आश्रम की वनस्पतियों के बीच अत्यन्त आत्मीय सम्बन्ध का सजीव चित्रण हुआ है।

भाव-सौन्दर्य: वृक्षों को पहले जल देना, उनके पल्लव न तोड़ना और उनके पुष्पित होने पर उत्सव मनाना—इन क्रमिक उदाहरणों से शकुन्तला के प्रकृति-प्रेम की गहराई प्रकट होती है।

नाट्यगत महत्त्व: शकुन्तला की विदाई को केवल पिता-पुत्री का प्रसंग न रखकर सम्पूर्ण तपोवन की विदाई बना देना कालिदास की अद्भुत नाट्य-कौशलपूर्ण योजना है।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूलश्च शिवश्च पन्थाः॥११॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के घर जाने के लिए आश्रम से विदा होती है। कण्व तथा आश्रमवासी उसके लिए मंगलकामना करते हैं। वृक्षों से विदाई की अनुमति प्राप्त होने के पश्चात् शकुन्तला के आगे के मार्ग के लिए भी मंगलाशीष दी जाती है। इसी अवसर पर कण्व शकुन्तला के यात्रा-पथ की कल्पना करते हुए कामना करते हैं कि उसका मार्ग सुन्दर सरोवरों और शीतल छायादार वृक्षों से युक्त हो, सूर्य की तीव्र किरणों का ताप उसे न सताए तथा कमल-पराग से कोमल हुई धूल उसके मार्ग को सुखद बनाए। इस प्रकार पुत्री की विदाई के क्षण में उसके सम्पूर्ण यात्रा-पथ के सुखद, शान्त और मंगलमय होने की कामना प्रस्तुत पद्य में की गई है।

अर्थ:- शकुन्तला का मार्ग कमलिनियों से सुशोभित सरोवरों के कारण रमणीय हो, छाया देने वाले वृक्षों से सूर्य की किरणों का ताप शान्त हो, कमल के पराग से कोमल हुई धूल उसके मार्ग को सुखद बनाए तथा उसका पथ शान्त, अनुकूल और मंगलमय हो।

व्याख्या:- शकुन्तला के आश्रम से विदा होने के समय कण्व का वात्सल्य केवल उसके प्रस्थान तक सीमित नहीं रहता। वे उसके आगे के मार्ग की प्रत्येक सम्भावित कठिनाई को दूर करने की कामना करते हैं। मार्ग में शीतल जल से भरे, कमलिनियों से सुशोभित सरोवर हों और ऐसे छायादार वृक्ष हों जो सूर्य की तीव्र किरणों को रोक दें—इस प्रकार यात्रा उसके लिए सुखद एवं श्रमहीन बने। 'कुशेशयरजोमृदुरेणुः' में कालिदास की प्रकृति-कल्पना विशेष रूप से मनोहर

है। कमल के पराग से कोमल हुई मार्ग की धूल मानो शकुन्तला के कोमल चरणों का स्पर्श करने के लिए स्वयं को मृदु बना रही हो। अन्त में 'शान्तानुकूलश्च शिवश्च पन्थाः' के द्वारा कण्व की मंगलकामना चरम पर पहुँचती है—उसकी यात्रा केवल सुखद ही नहीं, बल्कि पूर्णतः शान्त, अनुकूल और कल्याणकारी हो।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: प्रधानतः करुण रस, जिसमें वात्सल्य एवं मंगलकामना का भाव अत्यन्त प्रबल है।

प्रकृति-चित्रण: सरोवर, कमलिनी, छायादार वृक्ष, सूर्यकिरण और कमल-पराग से युक्त धूलि का अत्यन्त सजीव चित्रण।

अलंकार: रूपक एवं विशेषण-वैचित्र्य से मार्ग का सौन्दर्य उभरता है; 'कुशेशयरजोमृदुरेणुः' मेंअत्यन्त कोमल कल्पना है।

चित्रात्मकता: शीतल सरोवर, छायादार वृक्ष और कमल-पराग से कोमल धूलि मिलकर शकुन्तला के लिए आदर्श यात्रा-पथ की कल्पना प्रस्तुत करते हैं।

नाट्यगत महत्त्व: विदाई के करुण वातावरण के बीच यह मंगलकामना दृश्य को भावात्मक पूर्णता प्रदान करती है।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते॥१४॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के घर जाने के लिए कण्वाश्रम से विदा हो रही है। कण्व तथा आश्रमवासी उसके वियोग से अत्यन्त व्यथित हैं और आश्रम की प्रकृति तथा जीव-जगत् भी उसके प्रति अपने आत्मीय स्नेह को प्रकट कर रहे हैं। जब शकुन्तला आगे बढ़ती है, तब उसे अनुभव होता है कि कोई उसके वस्त्र को पीछे से खींच रहा है। वह पीछे मुड़कर देखती है और पूछती है—"यह कौन मेरे वस्त्र में अटक रहा है?" तब कण्व बताते हैं कि यह वही मृगशावक है, जिसके कुश की नोक से घायल मुख पर शकुन्तला ने इङ्गुदी का तेल लगाया था और जिसे वह श्यामाक की मुट्ठियाँ खिलाकर पुत्र के समान पालती थी। वही प्रिय मृग आज उसके वियोग को सहन न कर पाने के कारण उसका मार्ग छोड़ नहीं रहा है। इसी अत्यन्त करुण और वात्सल्यपूर्ण प्रसंग की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद्य में हुई है।

अर्थ:- हे पुत्रि! जिस मृग के कुश की नोक से घायल मुख पर तुमने घाव भरने वाला इङ्गुदी का तेल लगाया था, जिसे तुमने श्यामाक की मुट्ठियाँ-मुट्ठियाँ खिलाकर पाला था और जिसे पुत्र के समान माना था—वही यह मृग तुम्हारा मार्ग नहीं छोड़ रहा है। अर्थात् जिसके कुश की नोक से विद्ध मुख पर तुम्हारे द्वारा घाव भरने वाला इङ्गुदी का तेल लगाया गया था, जो श्यामाक की मुट्ठियों से पाला गया था और जिसे तुमने पुत्र के समान माना था, वही यह मृग तुम्हारा मार्ग नहीं छोड़ रहा है।

व्याख्या:- शकुन्तला के प्रस्थान के समय कण्व का ध्यान उस मृगशावक की ओर जाता है, जिसे शकुन्तला ने अत्यन्त प्रेम और वात्सल्य से पाला था। कभी कुश की नुकीली नोक से उसके मुख में घाव हो गया था। तब शकुन्तला ने उसके घाव पर इङ्गुदी का औषधीय तेल लगाया था। इतना ही नहीं, वह उसे श्यामाक की मुट्ठियाँ खिलाकर पालती थी। इसलिए वह मृगशावक उसके लिए सामान्य वन्यप्राणी नहीं, बल्कि पुत्रवत् प्रिय हो गया था। अब शकुन्तला जब आश्रम छोड़कर जा रही है, तो वही मृग उसके वस्त्र को पकड़कर उसे रोकने का प्रयत्न करता है। 'ते पदवीं न जहाति' का

अर्थ है—"वह तुम्हारा मार्ग नहीं छोड़ रहा है", अर्थात् वह उसके साथ चलना चाहता है और उसके वियोग को स्वीकार नहीं कर पा रहा। इस छोटे-से व्यवहार में मृगशावक का गहरा स्नेह और शकुन्तला से उसका आत्मीय सम्बन्ध अत्यन्त मार्मिक रूप से व्यक्त हुआ है। यहाँ कालिदास ने एक मूक प्राणी की चेष्टा के माध्यम से वियोग की तीव्रता को व्यक्त किया है। शकुन्तला ने जिस जीव को कभी घायल अवस्था में बचाया और पुत्रवत् पाला था, वही आज उसके प्रस्थान के समय उसे रोक रहा है। इस प्रकार उसके जाने का दुःख केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि तपोवन के मूक प्राणी भी उसके वियोग में सहभागी हो जाते हैं।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: *प्रधानतः करुण रस, जिसमें वात्सल्य एवं स्नेह का अत्यन्त मार्मिक संचार है।*

अलंकार: *मृग के स्वाभाविक व्यवहार का सजीव चित्रण होने से यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। टीका-परम्परा भी इसे मृग-स्वभाव की अभिव्यक्ति मानती है।*

प्रकृति-मानव तादात्म्य: *मृग को शकुन्तला के पुत्रवत् सम्बन्ध में प्रस्तुत किया गया है।*

भाव-सौन्दर्य*: इङ्गुदी-तेल से घाव का उपचार और श्यामाक खिलाकर पालन—ये दोनों स्मृतियाँ शकुन्तला के वात्सल्य को मूर्त रूप देती हैं।*

नाट्यगत सौन्दर्य*:शकुन्तला का वस्त्र पकड़कर मृग का उसे रोकना विदाई-दृश्य की करुणा को चरम तक पहुँचा देता है।*

विशेषता: *'ते पदवीं न जहात'में मृग का मार्ग न छोड़ना उसके गहरे स्नेह का अत्यन्त सरल किन्तु प्रभावशाली संकेत है।*

छन्द: *वसन्ततिलका।*

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं वाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धनम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति॥१५॥

सन्दर्भ-प्रसंग*:- महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के घर जाने के लिए कण्वाश्रम से विदा हो रही है। विदाई के इस करुण अवसर पर कण्व तथा आश्रमवासी उसके वियोग से अत्यन्त व्यथित हैं। आश्रम के मृग, मयूर और लताएँ भी शकुन्तला के प्रति अपने स्नेह को व्यक्त करते हुए मानो उसके वियोग में सहभागी हो रहे हैं। शकुन्तला की आँखें आँसुओं से भर गई हैं। वह भावविह्वल होकर आगे बढ़ रही है। कण्व उसे देखकर अत्यन्त स्नेहपूर्वक समझाते हैं कि वह अपने आँसुओं को रोककर धैर्य धारण करे, क्योंकि सामने का मार्ग ऊँचा-नीचा है और आँसुओं के कारण भूमि के उतार-चढ़ाव दिखाई नहीं दे रहे हैं। इसलिए उसके पैर ठीक प्रकार से नहीं पड़ रहे हैं और स्खलित हो रहे हैं। पुत्री को सम्भालने के बहाने कण्व की गहरी पितृचिन्ता और वात्सल्य इस पद्य में अत्यन्त मार्मिक रूप से अभिव्यक्त हुआ है।*

अर्थ*:- हे शकुन्तले! ऊपर उठी हुई पलकों वाले तुम्हारे नेत्रों में जो आँसू रुक गए हैं, उनके निरन्तर बहने को धैर्यपूर्वक रोक लो। इस मार्ग में भूमि के ऊँचे-नीचे भाग तुम्हें दिखाई नहीं दे रहे हैं; अतः तुम्हारे पैर ठीक प्रकार से नहीं पड़ रहे हैं, बल्कि स्खलित हो रहे हैं।*

व्याख्या*:- शकुन्तला के विदा होने का क्षण अत्यन्त करुण है। उसके नेत्र आँसुओं से भर गए हैं और वह अपने प्रिय आश्रम, पिता तथा सखियों को छोड़कर जा रही है। कण्व स्वयं भी इस वियोग से भीतर से व्यथित हैं, फिर भी वे*

अपनी भावनाओं को संयत करके पुत्री को सँभालते हैं। वे उसे सीधे रोने से मना नहीं करते, बल्कि अत्यन्त स्नेहपूर्ण ढंग से कहते हैं कि आँसुओं को रोक लो, क्योंकि सामने का मार्ग ऊँचा-नीचा है। 'अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे' में यह स्थिति स्पष्ट है कि आँसुओं के कारण शकुन्तला को मार्ग की ऊँच-नीच दिखाई नहीं दे रही। फलतः 'पदानि विषमीभवन्ति'—उसके पैर अस्थिर होकर पड़ रहे हैं, अर्थात् वह स्खलित हो रही है। कण्व की यह छोटी-सी व्यावहारिक चिन्ता उनके भीतर छिपे अपार वात्सल्य को और अधिक मार्मिक बना देती है।

इस पद्य की गहराई यह भी है कि शकुन्तला अब आश्रम के परिचित और सुरक्षित संसार से निकलकर एक अपरिचित जीवन की ओर जा रही है। अतः सामने का ऊँचा-नीचा मार्ग उसके भावी जीवन की सम्भावित कठिनाइयों की ओर भी सूक्ष्म संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। बाह्य मार्ग की विषमता और अन्तर्मन की व्यथा—दोनों यहाँ एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: प्रधानतः करुण रस, जिसमें पितृवात्सल्य का अत्यन्त प्रभावशाली संचार है।

अलंकार: व्यञ्जना का विशेष सौन्दर्य है। मार्ग की ऊँच-नीच के माध्यम से शकुन्तला के भावी जीवन-पथ की विषमता का सांकेतिक बोध होता है।

चित्रण: आँसुओं से भरे नेत्र, रुकता हुआ अश्रुप्रवाह और ऊँचे-नीचे मार्ग का दृश्य अत्यन्त सजीव है।

भाव-सौन्दर्य: कण्व स्वयं दुःखी होते हुए भी शकुन्तला की सुविधा और सुरक्षा की चिन्ता करते हैं—यह पितृवात्सल्य की चरम अभिव्यक्ति है।

नाट्यगत महत्त्व: विदाई के करुण दृश्य में यह पद्य भावों को और गहन करता है तथा कण्व-शकुन्तला सम्बन्ध की आत्मीयता को उजागर करता है।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः॥१७॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के घर जाने के लिए कण्वाश्रम से विदा हो रही है। कण्व ने उसे पुत्री के समान पाला है और अब उसके विवाहोत्तर जीवन के प्रति स्वाभाविक रूप से चिन्तित हैं। आश्रम से विदा करते समय वे शार्ङ्गरव आदि शिष्यों को उसके साथ दुष्यन्त के पास भेजते हैं। शकुन्तला को पति के घर भेजने से पहले कण्व शार्ङ्गरव को राजा दुष्यन्त के लिए अपना सन्देश देते हैं। वे दुष्यन्त को स्मरण कराते हैं कि कण्व और उनके आश्रमवासी संयम को अपना धन मानने वाले तपस्वी हैं तथा उनका कुल उच्च और मर्यादित है। साथ ही वे कहते हैं कि शकुन्तला ने दुष्यन्त के प्रति जो स्वाभाविक स्नेह विकसित किया है, उसे ध्यान में रखते हुए राजा उसे अपनी अन्य पत्नियों के समान सम्मान और व्यवहार दें। इसके आगे उसके वैवाहिक जीवन का सुख-दुःख भाग्य पर निर्भर है; कन्या के पिता के रूप में कण्व उससे अधिक कुछ कहना उचित नहीं समझते।

अर्थ:- हे दुष्यन्त! हम संयम को ही अपना धन मानने वाले तपस्वी हैं—इस बात का भली-भाँति विचार करना और अपने उच्च कुल का भी ध्यान रखना। शकुन्तला ने तुम्हारे प्रति जो स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न किया है, उसे भी ध्यान में रखना। अतः तुम इसे अपनी अन्य पत्नियों के साथ समान व्यवहार करते हुए स्वीकार करना और देखना। इसके आगे उसके वैवाहिक जीवन में क्या होगा, वह भाग्य के अधीन है; वधू के सम्बन्धियों द्वारा उससे आगे कुछ कहना उचित नहीं है।

व्याख्या:- प्रस्तुत पद्य में कण्व का व्यक्तित्व एक साथ तपस्वी, कुलगुरु और वात्सल्यपूर्ण पिता के रूप में सामने आता है। वे दुष्यन्त से कोई अनुचित आग्रह नहीं करते, न ही अपनी पुत्री के लिए विशेष अधिकार माँगते हैं। पहले वे अपने आश्रम की मर्यादा और तपस्वी जीवन का परिचय देते हैं—'संयमधनान्'—अर्थात् जिनके लिए संयम ही वास्तविक धन है। साथ ही दुष्यन्त को उसके अपने उच्च कुल का स्मरण कराते हैं। यह स्मरण वस्तुतः राजा को उसके कुल, धर्म और राजकीय मर्यादा के अनुरूप आचरण करने की प्रेरणा है। इसके बाद कण्व शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त के व्यवहार का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्देश देते हैं—'सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया।' अर्थात् शकुन्तला को अपनी अन्य पत्नियों से अलग न समझकर समान सम्मान और अधिकार के साथ देखना। यहाँ कण्व अपनी पुत्री के लिए किसी विशेष कृपा की याचना नहीं करते, बल्कि उसके न्यायोचित दाम्पत्य-अधिकार की मर्यादित अपेक्षा रखते हैं। अन्तिम चरण—'भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः'—में कण्व की असाधारण संयमशीलता दिखाई देती है। वे जानते हैं कि विवाह के बाद कन्या का जीवन अनेक परिस्थितियों और भाग्य पर निर्भर है; अतः पिता के रूप में वे मर्यादा का उल्लंघन करके आगे कुछ कहना उचित नहीं मानते।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: प्रधानतः करुण रस, जिसके भीतर वात्सल्य, धर्मबुद्धि और मर्यादा का भाव समन्वित है।

भाव-सौन्दर्य: पिता अपनी पुत्री के लिए विशेष कृपा नहीं, बल्कि समान सम्मान और उचित व्यवहार की अपेक्षा करता है—यह अत्यन्त उदात्त भाव है।

शैली: भाषा अत्यन्त संयत, गम्भीर और उपदेशात्मक है; इसमें कण्व की तपस्वी-गम्भीरता स्पष्ट दिखाई देती है।

ध्वनि: 'संयमधन' और 'उच्चैः कुलम्' के स्मरण से दुष्यन्त के धर्म एवं कुलमर्यादा के अनुरूप आचरण करने की अप्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है।

नाट्यगत महत्त्व: यह पद्य शकुन्तला की विदाई को केवल भावुक प्रसंग न बनाकर उसके वैवाहिक अधिकार और सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़ देता है।

विशेषता: 'भाग्यायत्तमतः परम्' में कण्व की मर्यादा और संयम की पराकाष्ठा दिखाई देती है।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥१८॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के घर जाने के लिए कण्वाश्रम से विदा हो रही है। कण्व ने उसे पुत्री के समान पाला है और अब उसके वैवाहिक जीवन के प्रति स्वाभाविक रूप से चिन्तित हैं। विदाई के समय वे शार्ङ्गरव आदि शिष्यों को दुष्यन्त के पास उसके साथ

भेजते हैं और स्वयं शकुन्तला को गृहिणी-जीवन के लिए आवश्यक व्यवहार की शिक्षा देते हैं। इसी अवसर पर कण्व उसे समझाते हैं कि उसे गुरुजनों की सेवा करनी चाहिए, पति की अन्य पत्नियों के साथ प्रिय सखी जैसा व्यवहार रखना चाहिए और पति के प्रतिकूल व्यवहार करने पर भी क्रोधवश उसके प्रति विरोध नहीं करना चाहिए। सेवक-परिजनों के साथ भी उदार एवं मधुर व्यवहार तथा अपने सौभाग्य पर अहंकार न करने का उपदेश देते हुए कण्व अन्त में कहते हैं कि इसी प्रकार आचरण करने वाली युवतियाँ ही गृहिणी के पद को प्राप्त करती हैं; इसके विपरीत आचरण करने वाली स्त्रियाँ अपने कुल के लिए दुःख और विपत्ति का कारण बनती हैं।

अर्थ:- हे शकुन्तले! अपने गुरुजनों और बड़ों की सेवा करना। पति की अन्य पत्नियों के प्रति प्रिय सखी के समान व्यवहार करना। यदि पति कभी तुम्हारे साथ प्रतिकूल व्यवहार करे, तब भी क्रोध के कारण उसके प्रति विरोधपूर्ण आचरण मत करना। अपने सेवक-परिजनों के साथ अधिकाधिक विनम्र एवं मधुर व्यवहार करना और अपने सौभाग्य पर कभी अभिमान मत करना। इस प्रकार आचरण करने वाली युवतियाँ ही आदर्श गृहिणी का पद प्राप्त करती हैं; इसके विपरीत आचरण करने वाली युवतियाँ अपने कुल के लिए दुःख और विपत्ति का कारण बनती हैं।

व्याख्या:- यह पद्य कण्व के पितृवात्सल्य और व्यवहारिक जीवन-दृष्टि का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। शकुन्तला अब तपोवन के सरल, आत्मीय और सुरक्षित वातावरण से निकलकर पति के घर जा रही है। इसलिए कण्व उसे केवल भावुक विदाई नहीं देते, बल्कि उसके भावी गृहस्थ जीवन के लिए आवश्यक आचरण-सूत्र बताते हैं। वे गुरुजनों की सेवा, सह-पत्नियों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार, पति के प्रति धैर्य, परिजनों के प्रति विनय और अपने सौभाग्य के प्रति निरभिमान रहने का उपदेश देते हैं।

विशेष रूप से 'भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः' में कण्व शकुन्तला को क्रोध के वशीभूत होकर दाम्पत्य-सौहार्द को नष्ट न करने की शिक्षा देते हैं। यहाँ 'विप्रकृता' का आशय पति द्वारा अप्रसन्न किए जाने या प्रतिकूल व्यवहार किए जाने से है। अन्तिम चरण में कण्व इस पूरे उपदेश का निष्कर्ष देते हैं—जो युवतियाँ इस प्रकार संयम, विनय और सौहार्द से गृहस्थ-जीवन का निर्वाह करती हैं, वही गृहिणीपद की वास्तविक गरिमा प्राप्त करती हैं; इसके विपरीत स्वेच्छाचारी और कलहप्रिय आचरण कुल के लिए 'आधयः', अर्थात् दुःख और विपत्ति का कारण बनता है।

महत्त्वपूर्ण भाव-बिन्दु:- यहाँ कण्व शकुन्तला को केवल "पति की आज्ञा मानने" का उपदेश नहीं दे रहे हैं; पूरे पद्य का व्यापक आशय गृहस्थ-जीवन में सेवा, सौहार्द, क्षमा, विनय, आत्मसंयम और पारिवारिक समन्वय की स्थापना है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: प्रधानतः करुण रस, जिसके भीतर वात्सल्य और शान्त भाव की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति है।

अलंकार: अन्तिम चरण में व्यतिरेक का सौन्दर्य है—सदाचारिणी युवतियाँ गृहिणी-पद प्राप्त करती हैं, जबकि विपरीत आचरण करने वाली कुल के लिए दुःख का कारण बनती हैं।

सूक्तिपरकता: पूरा पद्य गृहस्थ-जीवन के व्यवहार-सिद्धान्तों को अत्यन्त संक्षिप्त एवं स्मरणीय रूप में प्रस्तुत करता है।

भाव-सौन्दर्य: कण्व का उपदेश कठोर न होकर एक अनुभवी पिता की स्नेहपूर्ण शिक्षा के रूप में सामने आता है।

नाट्यगत महत्त्व: यह शकुन्तला के आश्रम-जीवन से गृहिणी-जीवन में प्रवेश का संस्कारात्मक क्षण है।

चरित्र-चित्रण: इससे कण्व के दूरदर्शी, संयमी और वात्सल्यपूर्ण पिता के रूप का उद्घाटन होता है तथा शकुन्तला के आदर्श गृहिणी-रूप की भूमिका तैयार होती है।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि॥१९॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के घर जाने के लिए कण्वाश्रम से विदा हो रही है। विदाई के समय वह अपने पिता कण्व से बिछुड़ने की कल्पना करके अत्यन्त व्याकुल हो जाती है और कहती है कि पिता की गोद से अलग होकर वह परदेश में किस प्रकार जीवन धारण करेगी। शकुन्तला की इस करुण अवस्था को देखकर कण्व उसे सान्त्वना देते हैं। वे उसके भावी जीवन की सुखद कल्पना प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि वह उच्च कुल वाले पति की सम्माननीय गृहिणी बनेगी,उसके बड़े-बड़े गृहस्थ कार्यों में व्यस्त रहेगी और शीघ्र ही एक पवित्र एवं तेजस्वी पुत्र को जन्म देगी। तब वह अपने पुत्र के स्नेह में इतनी रम जाएगी कि पिता से वियोग का वर्तमान दुःख उसे उतना कष्टकर नहीं लगेगा। इसी वात्सल्यपूर्ण सान्त्वना की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद्य में हुई है।

अर्थ:- हे पुत्रि! तुम उच्च कुल वाले पति की सम्माननीय गृहिणी के पद पर प्रतिष्ठित होकर उनके वैभव के कारण महत्त्वपूर्ण गृहस्थ-कार्यों में प्रत्येक क्षण व्यस्त रहोगी। कुछ ही समय बाद पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार तुम एक पवित्र और तेजस्वी पुत्र को जन्म दोगी। तब, हे पुत्रि, तुम मेरे वियोग से उत्पन्न दुःख को अधिक महत्त्व नहीं दोगी।

व्याख्या:- शकुन्तला अपने पिता से बिछुड़ने के विचार से अत्यन्त व्याकुल है। कण्व उसकी मनोदशा को समझते हैं और उसे तर्क से नहीं, बल्कि भविष्य के सुख की कल्पना द्वारा सांत्वना देते हैं। वे कहते हैं कि तुम उच्च कुल वाले दुष्यन्त की सम्मानित पत्नी बनोगी और उनके विशाल राजकीय परिवार तथा गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त रहोगी। इस प्रकार तुम्हारा नया जीवन तुम्हें अनेक उत्तरदायित्वों और सुखद अनुभवों से जोड़ देगा। इसके बाद कण्व की कल्पना और अधिक भावपूर्ण हो जाती है। वे कहते हैं कि तुम शीघ्र ही एक पवित्र एवं तेजस्वी पुत्र को जन्म दोगी। उसके जन्म की तुलना पूर्व दिशा द्वारा सूर्य के प्रसव से की गई है—जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देकर समस्त जगत् को प्रकाशित करती है, वैसे ही शकुन्तला का पुत्र अपने तेज और यश से संसार को प्रकाशित करेगा। इस उपमा में भविष्य के भरत की महानता की सूक्ष्म पूर्वसूचना भी निहित है। टीका-परम्परा भी 'अर्क' के माध्यम से पुत्र के असाधारण तेज और व्यापक यश की व्यञ्जना स्वीकार करती है।

अन्तिम चरण अत्यन्त करुण है— 'मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि।' कण्व यह नहीं कहते कि पुत्री को पिता का वियोग भूल ही जाएगा; वे केवल यह आशा व्यक्त करते हैं कि भावी पुत्र-स्नेह और गृहस्थ-जीवन के सुख के सामने यह वियोग-दुःख गौण हो जाएगा। इस प्रकार सान्त्वना देते हुए भी कण्व के अपने हृदय में पुत्री-वियोग की पीड़ा कितनी गहरी है, यह सहज ही अनुभव किया जा सकता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: प्रधानतः करुण रस, जिसमें वात्सल्य और भविष्य के मंगल की आशा का सुन्दर समन्वय है।

अलंकार: 'प्राचीवार्कम्' में स्पष्ट उपमा अलंकार है—पूर्व दिशा और शकुन्तला की तुलना, सूर्य और पुत्र की तुलना।

ध्वनि: सूर्य की उपमा द्वारा पुत्र के तेज, यश और असाधारण महत्ता की सूक्ष्म व्यञ्जना होती है। आगे चलकर भरत के महान् व्यक्तित्व की यह पूर्वसूचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वात्सल्य-सौन्दर्य: पिता अपनी पुत्री के भावी पुत्र को लेकर ऐसी कल्पना करता है कि वर्तमान वियोग की पीड़ा भी उसे कम प्रतीत होगी।

नाट्यगत महत्त्व: यह पद्य शकुन्तला के तत्कालीन वियोग-दुःख को कम करने के साथ-साथ उसके भावी पुत्र और उसके महान् भविष्य की ओर संकेत करता है।

भाषा-शैली: अत्यन्त कोमल, आश्वासक और भावपूर्ण।

छन्द: शार्दूलविक्रीडित।

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥२०॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पिता कण्व और आश्रम से विदा होकर पति दुष्यन्त के गृह जाने वाली है। विदाई के इस अत्यन्त मार्मिक अवसर पर कण्व उसे गृहस्थ-जीवन के कर्तव्यों और भावी सुखों का स्मरण कराते हुए सांत्वना देते हैं। पिछले पद्य में उन्होंने उसके भावी मातृत्व की कल्पना की थी; अब वे उसके पुत्र के महान् होकर राज्यभार सँभालने तथा उसके पश्चात् पति के साथ पुनः आश्रम में लौटने की सुखद कल्पना प्रस्तुत करते हैं।

अर्थ:- हे वत्से! तुम दीर्घकाल तक चारों दिशाओं तक विस्तृत पृथ्वी की स्वामिनी बनकर, दुष्यन्त के ऐसे पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करके जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न होगा, उस समय अपने पति के साथ, जिसे तुम परिवार का भार सौंप चुकी होगी, पुनः इस शांत आश्रम में आकर निवास करोगी।

व्याख्या:- कण्व शकुन्तला के वर्तमान वियोग-दुःख को उसके भविष्य के सुखद जीवन की कल्पना द्वारा कम करना चाहते हैं। वे देखते हैं कि आगे चलकर शकुन्तला एक महान् सम्राज्ञी बनेगी और उसका पुत्र इतना प्रतापी होगा कि उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहेगा। यहाँ "दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयम्" में भावी पुत्र भरत की महानता का संकेत मिलता है। इस प्रकार कण्व की दृष्टि वर्तमान विदाई से आगे बढ़कर शकुन्तला के उज्ज्वल भविष्य पर केन्द्रित हो जाती है।

पद्य का अंतिम भाग विशेष रूप से वात्सल्यपूर्ण है। कण्व कल्पना करते हैं कि जब पुत्र राज्यभार सँभाल लेगा और शकुन्तला का पारिवारिक दायित्व हल्का हो जाएगा, तब वह अपने पति के साथ इसी शांत आश्रम में पुनः लौटेगी। इस प्रकार "पुनराश्रमेऽस्मिन्" केवल आश्रम में लौटने की बात नहीं, बल्कि कण्व के हृदय में अपनी पुत्री को फिर से देखने की आशा का भी अत्यन्त मार्मिक संकेत है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: — करुणरसस्य पृष्ठभूमौ वात्सल्यभावः तथा भावी-मङ्गलस्य आशा अत्यन्तं प्रभावशालिनी।

अलंकार: — *"चतुरन्तमहीसपत्नी" में साम्राज्य-विस्तार की भव्य कल्पना है; "दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयम्" में भावी पुत्र की अप्रतिम वीरता का संकेत है।*

ध्वनि — *पुत्र के रूप में भरत के भावी साम्राज्य और यश की पूर्वसूचना मिलती है।*

नाट्यगत महत्त्व —*कण्व की विदाई-वेला को निराशा पर समाप्त न करके भविष्य की आशा से जोड़ता है।*

प्रकृति-सान्निध्य — *"शान्ते ... आश्रमे" के द्वारा आश्रम को पुनः आत्मीय शरणस्थली के रूप में प्रस्तुत किया गया है।*

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥ २२॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- *चतुर्थाङ्क में शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के गृह जाने के लिए आश्रम से विदा हो रही है। कण्व ने उसे गृहस्थ-जीवन के लिए आशीर्वाद और उपदेश दिए हैं तथा अत्यन्त वात्सल्य के साथ विदा किया है। शकुन्तला के चले जाने के बाद कण्व आश्रम की ओर देखते हुए उसके वियोग से उत्पन्न शून्यता का अनुभव करते हैं। इसी अवसर पर वे अपने मन की स्थिति बताते हुए कहते हैं कि कन्या विवाह के बाद पति-कुल की हो जाती है; अतः आज शकुन्तला को उसके पति को सौंप देने पर उनका अन्तःकरण उस व्यक्ति के समान निश्चिन्त हो गया है, जिसने अपनी धरोहर उसके स्वामी को लौटा दी हो।*

अर्थ:- *कन्या वास्तव में पराया धन होती है। आज उस शकुन्तला को उसके पति दुष्यन्त के पास भेज देने पर मेरा अन्तःकरण उस व्यक्ति के समान अत्यन्त निश्चिन्त, भाररहित और निर्मल हो गया है, जिसने अपनी धरोहर उसके वास्तविक स्वामी को लौटा दी हो।*

व्याख्या:- *कण्व के इस कथन में पितृधर्म और कन्या के विवाहोत्तर दायित्व की भावना व्यक्त हुई है। पिता के घर में रहते हुए कन्या की रक्षा और पालन-पोषण करना पिता का कर्तव्य है; विवाह के पश्चात् वह अपने पति के घर चली जाती है। अतः कण्व को लगता है कि उन्होंने शकुन्तला को उसके उचित अधिकारी—पति दुष्यन्त—को सौंपकर अपना उत्तरदायित्व पूरा कर दिया है। इसी भाव को "कन्या परकीय एव अर्थः" द्वारा व्यक्त किया गया है।*

"प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा" इस पद्य की सबसे मार्मिक कल्पना है। जैसे किसी व्यक्ति के पास किसी की धरोहर सुरक्षित रखी हो और उसे उसके स्वामी को लौटा देने के बाद उसका मन उस उत्तरदायित्व से मुक्त होकर निश्चिन्त हो जाए, वैसे ही शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजकर कण्व का अन्तःकरण भाररहित हो गया है। यहाँ "विशदः" का अर्थ केवल प्रसन्न होना नहीं, बल्कि चिन्ता और उत्तरदायित्व के भार से मुक्त, निश्चिन्त एवं निर्मल होना है। फिर भी यह निश्चिन्तता उनके वात्सल्य-वियोग को मिटा नहीं देती—चतुर्थाङ्क का समूचा प्रसंग उनके गहरे पुत्री-स्नेह का प्रमाण है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

रस: — *करुणरस की पृष्ठभूमि में कण्व का वात्सल्यभाव अत्यन्त प्रभावशाली है।*

अलंकार: - *उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग है—कण्व का अन्तःकरण मानो धरोहर लौटा देने वाले व्यक्ति का अन्तःकरण हो गया है। टीका भी यहाँ न्यास के साथ साधर्म्य और उत्प्रेक्षा की ओर संकेत करती है।*

कल्पना-सौन्दर्य — *"न्यास" और "प्रत्यर्पण" के माध्यम से पिता के उत्तरदायित्व को अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से व्यक्त किया गया है।*

भाव-सौन्दर्य — *"विशदः" में कर्तव्य-पूर्ति से उत्पन्न निश्चिन्तता तथा उसके भीतर छिपा वात्सल्य-वियोग दोनों साथ-साथ व्यञ्जित होते हैं।*

छन्दः — *इन्द्रवज्रा।*

नाट्यगत महत्त्व — *यह चतुर्थाङ्क के विदाई-प्रसंग को कण्व के आत्मचिन्तन के साथ अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से पूर्ण करता है।*

प्रश्न-अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए-

उत्तर- *महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' केवल दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रेमकथा नहीं, अपितु मानवीय भावनाओं, कर्तव्य, प्रेम, विरह, स्मृति, पश्चात्ताप और पुनर्मिलन का अत्यन्त कलात्मक नाट्यरूप है। इसकी सफलता का एक प्रमुख कारण यह है कि कालिदास ने पात्रों को केवल कथा की आवश्यकताओं के अनुसार नहीं गढ़ा, बल्कि उन्हें स्वतन्त्र व्यक्तित्व, मनोवैज्ञानिक गहराई और भावात्मक गरिमा प्रदान की है। दुष्यन्त और शकुन्तला नाटक के केन्द्र में हैं, जबकि कण्व,गौतमी और विदूषक जैसे पात्र कथा के भावात्मक, नैतिक और हास्यात्मक पक्षों को पूर्णता प्रदान करते हैं।*

१. राजा दुष्यन्त

***(क) परिचय**: - दुष्यन्त 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के नायक हैं। वे पौरववंशी राजा, प्रजापालक, पराक्रमी योद्धा और शकुन्तला के पति हैं। कालिदास ने उनके चरित्र में एक ओर राजर्षि का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर उन्हें अत्यन्त संवेदनशील, प्रेमशील और मानवीय भी बनाया है। इसीलिए दुष्यन्त का चरित्र एकरेखीय न होकर परिस्थितियों के साथ विकसित होता है।*

***(ख) वीरता और राजधर्मनिष्ठा**: - दुष्यन्त केवल प्रेम में निमग्न नायक नहीं हैं। वे एक कर्तव्यपरायण राजा हैं। आश्रम की रक्षा का दायित्व स्वीकार करना उनके राजधर्म का परिचायक है। तपस्वियों की यज्ञक्रियाओं की रक्षा के लिए वे अपने सैनिक धर्म का निर्वाह करते हैं। आरम्भ में मृगया करते हुए भी आश्रम-जीवन की पवित्रता का ध्यान रखते हैं और तपस्वियों के अनुरोध पर मृगवध से विरत होते हैं। इससे उनके भीतर की संयमशीलता और ऋषि-समाज के प्रति सम्मान प्रकट होता है।*

***(ग) सौन्दर्यबोध और प्रकृतिप्रेम**: - दुष्यन्त का व्यक्तित्व केवल राजकीय वैभव से निर्मित नहीं है। आश्रम में पहुँचकर वे प्रकृति और तपोवन के सौन्दर्य से प्रभावित होते हैं। शकुन्तला के प्रति उनका आकर्षण भी उसके प्राकृतिक परिवेश और सहज सौन्दर्य के साथ जुड़ा हुआ है। कालिदास के यहाँ दुष्यन्त की दृष्टि में नारी-सौन्दर्य और प्रकृति-सौन्दर्य का अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है। शकुन्तला उन्हें कृत्रिम राजसी वातावरण की नारी नहीं, बल्कि तपोवन में पली हुई प्रकृति-कन्या के रूप में आकर्षित करती है।*

***(घ) प्रेमी के रूप में दुष्यन्त**:- शकुन्तला के दर्शन के साथ ही दुष्यन्त के हृदय में प्रेम का अंकुर फूटता है। प्रारम्भ में वह आकर्षण है, फिर अनुराग, और अन्ततः गहन प्रेम में परिणत हो जाता है। वे शकुन्तला से गान्धर्व-विवाह करते हैं। यह उनके प्रेम की गम्भीरता को सिद्ध करता है। किन्तु कालिदास का दुष्यन्त केवल भावुक प्रेमी नहीं है। उसके भीतर राजा और प्रेमी—दोनों का द्वन्द्व चलता रहता है। यही द्वन्द्व आगे चलकर उसके चरित्र को अधिक मानवीय बनाता है।*

*(ङ) **विस्मृति और अन्तर्द्वन्द्व**: -नाटक में दुष्यन्त के चरित्र की सबसे जटिल अवस्था वह है जब दुर्वासा के शाप के कारण वे शकुन्तला को पहचान नहीं पाते। यहाँ उनके चरित्र का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष सामने आता है। दरबार में शकुन्तला को अस्वीकार करने वाला दुष्यन्त वस्तुतः स्वेच्छा से प्रेम का परित्याग करने वाला व्यक्ति नहीं है; उसकी स्मृति शाप के कारण आवृत है। अंगूठी प्राप्त होने पर स्मृति लौटते ही उसके भीतर पश्चात्ताप, आत्मग्लानि और विरह-वेदना का प्रबल उद्रेक होता है। इस प्रकार कालिदास ने दुष्यन्त के माध्यम से यह दिखाया है कि बाह्यतः कठोर प्रतीत होने वाला राजपुरुष भी भीतर से अत्यन्त संवेदनशील हो सकता है।*

*(च) **पश्चात्ताप और आत्मपरिष्कार**: -अभिज्ञान के पश्चात् दुष्यन्त का चरित्र एक नये स्तर पर पहुँचता है। अब वह केवल प्रेम का उपभोक्ता नहीं, बल्कि विरह की अग्नि में तपकर अधिक परिपक्व हुआ प्रेमी है। उसकी स्मृति लौटने के बाद का दुष्यन्त चित्रशाला में शकुन्तला का चित्र देखकर व्याकुल होता है, उसकी स्मृतियों में डूबता है और अन्ततः मारीचाश्रम में उससे पुनर्मिलन प्राप्त करता है। इस प्रकार नाटक के अन्त तक दुष्यन्त का चरित्र प्रेम ⟶ विस्मृति ⟶ पश्चात्ताप ⟶ आत्मपीड़ा ⟶ पुनर्मिलन की मनोवैज्ञानिक यात्रा पूरी करता है।*

समग्र मूल्यांकन

अतः दुष्यन्त वीरता, राजधर्म, प्रेम, सौन्दर्यबोध, संवेदनशीलता और पश्चात्ताप का समन्वित चरित्र है। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मानवीयता है। वह पूर्णतः दोषरहित देवपुरुष नहीं, बल्कि परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ ऐसा मनुष्य है जो भूल के बाद आत्मबोध प्राप्त करता है।

२. शकुन्तला

*(क) **परिचय**: - शकुन्तला नाटक की नायिका और भावात्मक केन्द्र है। वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री तथा महर्षि कण्व की पालिता है। कालिदास ने उसे केवल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति न बनाकर प्रेम, सरलता, लज्जा, त्याग, धैर्य और आत्मगौरव से सम्पन्न चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। आधुनिक अध्ययनों में भी शकुन्तला को नाटक की ऐसी केन्द्रीय स्त्री-प्रतिमा माना गया है जिसका व्यक्तित्व दुःख और प्रतीक्षा के माध्यम से परिपक्व होता है।*

*(ख) **प्रकृति की पुत्री**: - शकुन्तला का सबसे प्रमुख गुण है—उसका प्रकृति से अभिन्न सम्बन्ध। वह आश्रम में पली-बढ़ी है। लताएँ, वृक्ष, मृग, पक्षी और आश्रम के अन्य जीव-जगत उसके जीवन का हिस्सा हैं। इसलिए उसका सौन्दर्य भी प्राकृतिक है—उसमें राजमहल की कृत्रिमता नहीं, बल्कि वन्य जीवन की सहजता है। इसी कारण कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वह स्वयं आश्रम की एक लता के समान प्रतीत होती है।*

*(ग) **सरलता और निष्कपटता**: - शकुन्तला के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसकी निष्कपट सरलता है। प्रेम के विषय में वह अत्यन्त अनुभवहीन है। दुष्यन्त के प्रति उसके मन में प्रेम उत्पन्न होता है, पर वह उसे तत्काल स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर पाती। उसका प्रेम छल, राजनीति अथवा स्वार्थ से प्रेरित नहीं है। वह प्रेम को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण के रूप में स्वीकार करती है।*

*(घ) **प्रेम की गहनता**: - दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला का प्रेम केवल यौवनजन्य आकर्षण नहीं है। वह धीरे-धीरे उसकी सम्पूर्ण चेतना पर अधिकार कर लेता है। यही कारण है कि दुष्यन्त के चिन्तन में डूबी हुई वह दुर्वासा के आगमन तक का ध्यान नहीं रख पाती। यहीं से नाटक की मुख्य विपत्ति आरम्भ होती है।*

*(ङ) **लज्जाशीलता और मर्यादा**: - शकुन्तला अत्यन्त प्रेममयी होने पर भी मर्यादाहीन नहीं है। उसकी लज्जा, संकोच और विनय उसके प्रेम को गरिमा प्रदान करते हैं। दुष्यन्त के प्रति अनुरक्त होने के बावजूद वह नारी-सुलभ संकोच नहीं छोड़ती। कालिदास की नायिका का प्रेम उच्छृंखल नहीं, संस्कारित और उदात्त है।*

*(च) **दुःख में धैर्य**: - नाटक के उत्तरार्ध में शकुन्तला का चरित्र विशेष रूप से विकसित होता है। दुष्यन्त द्वारा अस्वीकार किए जाने की स्थिति में वह अत्यन्त पीड़ित होती है, किन्तु उसका आत्मसम्मान बना रहता है। वह अपने दुःख को लेकर न तो कटुता से भरती है और न ही प्रतिशोध की भावना रखती है। बाद में मारीचाश्रम में वह एक अधिक परिपक्व और तपःपूत व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। यही उसकी चरित्रगत यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि है—सरल आश्रम-कन्या से तपःपूत, धैर्यशालिनी और आत्मगौरव सम्पन्न नारी तक का विकास।*

*(छ) **मातृत्व और गरिमा**: - अन्तिम अंक में भरत के साथ दिखाई देने वाली शकुन्तला के व्यक्तित्व में एक नयी गरिमा आती है। अब वह केवल प्रेमिका नहीं है; वह पत्नी और माता के रूप में अधिक परिपक्व हो चुकी है।*

समग्र मूल्यांकन

शकुन्तला कालिदास की आदर्श नारी-सृष्टि है—किन्तु उसका आदर्शत्व केवल पतिव्रतधर्म तक सीमित नहीं। उसमें प्रकृति की कोमलता, प्रेम की पवित्रता, विरह की तपस्या, दुःख का धैर्य और व्यक्तित्व की गरिमा एक साथ विद्यमान हैं।

३. महर्षि कण्व

*(क) **परिचय**: - महर्षि कण्व नाटक के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सहायक पात्र हैं। वे शकुन्तला के पालक पिता, गुरु और आश्रमाधिपति हैं। यद्यपि वे नाटक में अपेक्षाकृत कम उपस्थित होते हैं, किन्तु उनका प्रभाव सम्पूर्ण नाटक पर व्याप्त है।*

*(ख) **आदर्श पालक पिता**: - कण्व का सबसे बड़ा गुण है—उनका वात्सल्य। शकुन्तला उनकी औरस पुत्री नहीं है, फिर भी वे उसे अपनी पुत्री से भी अधिक स्नेह से पालते हैं। उनके लिए पितृत्व रक्तसम्बन्ध पर नहीं, बल्कि स्नेह और संस्कार पर आधारित है।*

*(ग) **धर्मनिष्ठ और विवेकशील**: -कण्व भावुक होते हुए भी धर्म और सामाजिक मर्यादाओं से विचलित नहीं होते। जब उन्हें शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह का ज्ञान होता है, तो वे उसे अनुचित कहकर अस्वीकार नहीं करते। वे परिस्थिति को धर्मसम्मत दृष्टि से स्वीकार करते हैं।*

*(घ) **उदार और प्रगतिशील दृष्टि**: - कण्व का चरित्र विशेष रूप से इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वे शकुन्तला के जीवन के निर्णय में उसकी इच्छा औ र उसके वैवाहिक भविष्य को स्वीकार करते हैं। वे दुष्यन्त को योग्य पति मानते हैं और शकुन्तला को पतिगृह भेजते हैं। यहाँ कण्व का पितृवत् स्नेह और ऋषि का विवेक एक साथ दिखाई देता है।*

*(ङ) **करुणा और वात्सल्य का चरम**: - चतुर्थ अंक में जब शकुन्तला को विदा करने का समय आता है, तब कण्व का हृदय विदीर्ण हो उठता है। उनके मुख से निकली मार्मिक अभिव्यक्तियाँ संस्कृत नाट्यसाहित्य में करुण रस की*

अप्रतिम अभिव्यक्ति मानी जाती हैं।उनकी प्रसिद्ध भावना— "यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया..." में एक पिता की उस पीड़ा का चित्रण है जो अपनी पुत्री को पतिगृह भेजते समय अनुभव करता है। कण्व स्वयं स्वीकार करते हैं कि तपस्वी होकर भी पुत्री-वियोग ने उनके हृदय को द्रवित कर दिया है।

(च) आदर्श गुरु: - कण्व केवल पालक पिता नहीं, संस्कारदाता गुरु भी हैं। शकुन्तला को विदा करते समय वे उसे पतिगृह के कर्तव्यों का उपदेश देते हैं। इस प्रकार वे उसके व्यक्तित्व के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

समग्र मूल्यांकन

कण्व का चरित्र वात्सल्य, धर्म, विवेक, उदारता और त्याग का अद्भुत समन्वय है। वे कालिदास के आदर्श ऋषि ही नहीं, बल्कि ऐसे आदर्श पिता हैं जिनका पितृत्व रक्त से नहीं, प्रेम से निर्मित है। उनके कारण चतुर्थ अंक का वियोग-प्रसंग असाधारण करुणात्मक ऊँचाई प्राप्त करता है।

४. गौतमी

(क) परिचय: - गौतमी कण्वाश्रम की वयोवृद्ध तपस्विनी तथा शकुन्तला की संरक्षिका है। वह नाटक में अपेक्षाकृत गौण पात्र है, परन्तु उसका चरित्र आश्रम के मातृवत्, अनुशासित और स्नेहमय वातावरण का प्रतिनिधित्व करता है।

(ख) मातृवत् स्नेह: - गौतमी शकुन्तला के प्रति केवल आश्रम की एक वृद्धा के रूप में व्यवहार नहीं करती, बल्कि उसके प्रति माता जैसी आत्मीयता रखती है। शकुन्तला की शारीरिक अवस्था, उसके दुःख और उसकी यात्रा—सभी के प्रति वह सावधान रहती है। द्वितीय अंक में शकुन्तला की अस्वस्थता के प्रसंग में उसकी चिन्ता तथा शान्ति के उपायों का प्रबन्ध उसके मातृवत् स्वभाव को स्पष्ट करता है।

(ग) अनुशासन और आश्रम-व्यवस्था की संरक्षिका: - गौतमी का व्यक्तित्व भावुक होने के साथ-साथ व्यवहारकुशल और अनुशासनप्रिय भी है। वह आश्रम की मर्यादा और व्यवस्था का ध्यान रखती है। इस कारण वह केवल शकुन्तला की व्यक्तिगत संरक्षिका नहीं, बल्कि आश्रम-जीवन की एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था-शक्ति भी है।

(घ) संकट में सहारा: - जब शकुन्तला दुष्यन्त के पास जाती है, तब गौतमी उसके साथ जाती है। यह उसके विश्वासपात्र संरक्षक होने का प्रमाण है। दुष्यन्त के दरबार में उत्पन्न परिस्थिति में भी गौतमी शकुन्तला को अकेला नहीं छोड़ती। इस प्रकार वह नायिका के दुःख में सहभागी बनने वाले पात्र के रूप में सामने आती है।

(ङ) मातृसुलभ संवेदना: - गौतमी का स्नेह अत्यधिक भावुक होते हुए भी मर्यादित है। वह शकुन्तला को केवल दुलारती नहीं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर सावधान भी करती है। उसमें ममता और अनुशासन का संतुलन है।

समग्र मूल्यांकन

गौतमी का चरित्र नाटक में मातृस्नेह, संरक्षण, आश्रम-मर्यादा और व्यावहारिक बुद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। यदि कण्व आश्रम के पिता-स्वरूप हैं, तो गौतमी उसके मातृस्वरूप की प्रतिनिधि है। इसीलिए उसकी उपस्थिति शकुन्तला के आश्रम-जीवन को पूर्णता प्रदान करती है।

५. विदूषक — माधव्य

(क) परिचय: - माधव्य दुष्यन्त का विदूषक और घनिष्ठ मित्र है। संस्कृत नाट्यपरम्परा में विदूषक का कार्य केवल हास्य उत्पन्न करना नहीं है; वह नायक के अत्यन्त निकट रहकर उसके निजी मनोभावों का उद्घाटन भी करता है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में माधव्य इस भूमिका को प्रभावशाली ढंग से निभाता है।

(ख) हास्य का प्रमुख स्रोत: - माधव्य नाटक के गम्भीर और करुण वातावरण के बीच हास्य और विनोद उत्पन्न करता है। विशेष रूप से वनवास, मृगया और आश्रम-जीवन के प्रति उसका असन्तोष दर्शकों को सहज हास्य प्रदान करता है। उसकी दृष्टि में राजकीय सुखों की तुलना में वन-जीवन अत्यन्त कष्टकर है। खाने-पीने और आराम की उसकी चिन्ता उसके व्यक्तित्व को हास्यपूर्ण बनाती है।

(ग) स्पष्टवादी और अकृत्रिम: - माधव्य राजा से अत्यन्त निकटता के कारण उसके सामने अपनी बात खुलकर कह सकता है। वह राजकीय औपचारिकताओं से बँधा हुआ नहीं है। यही कारण है कि उसके माध्यम से दुष्यन्त के मन की वे बातें भी सामने आती हैं जिन्हें राजा स्वयं सीधे व्यक्त नहीं करता।

(घ) दुष्यन्त का अन्तरंग मित्र: - माधव्य केवल हास्य-पात्र नहीं है। वह दुष्यन्त का विश्वासपात्र मित्र है। दुष्यन्त उसके सामने शकुन्तला के प्रति अपने आकर्षण और प्रेम की चर्चा करता है। इस दृष्टि से विदूषक नाटक में नायक और दर्शक के बीच सेतु का कार्य करता है। वह नायक की आन्तरिक स्थिति को अधिक स्पष्ट और स्वाभाविक बनाता है।

(ङ) नायक के मानवीय पक्ष का उद्घाटन: - दुष्यन्त राजा है; उसके सामने सामान्य लोग मर्यादा और संकोच से बँधे रहते हैं। माधव्य ऐसा पात्र है जिसके सामने राजा सहज मनुष्य बन जाता है। इसलिए माधव्य के साथ दुष्यन्त के संवादों में हमें उसका थका हुआ, प्रेमातुर, चिंतित और कभी-कभी असहाय मनुष्य दिखाई देता है।

(च) नाटकीय संतुलन: - 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में प्रेम, विरह, शाप, अस्वीकृति और पश्चात्ताप जैसे गम्भीर प्रसंग हैं। यदि पूरा नाटक इसी गम्भीरता में चलता, तो भावात्मक तनाव अत्यधिक हो जाता। माधव्य इस तनाव को हास्य-विनोद द्वारा संतुलित करता है। इसलिए उसका हास्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि नाटक की नाट्य-रचना की आवश्यक तकनीक है।

समग्र मूल्यांकन

माधव्य का चरित्र हास्य, मित्रता, स्पष्टवादिता और मनोवैज्ञानिक उद्घाटन का समन्वय है। वह दुष्यन्त का केवल मनोरंजन करने वाला साथी नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व को दर्शकों के सामने खोलने वाला महत्त्वपूर्ण नाटकीय उपकरण है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि दुष्यन्त और शकुन्तला नाटक की भावात्मक धुरी हैं, कण्व उसके नैतिक एवं वात्सल्यपूर्ण आधार हैं, गौतमी आश्रम के मातृमय वातावरण की प्रतिनिधि हैं और माधव्य नाटकीय संतुलन तथा हास्य का आधार है। कालिदास की प्रतिभा इस बात में है कि इन सभी पात्रों को उन्होंने केवल कथा की आवश्यकता के रूप में नहीं, बल्कि अपने-अपने विशिष्ट मनोवैज्ञानिक और भावात्मक व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के पात्र आज भी संस्कृत नाट्यसाहित्य की सर्वाधिक स्मरणीय चरित्र-सृष्टियों में गिने जाते हैं।

4.स्वप्नवासवदत्तम्- नाटक

प्रश्न- स्वप्नवासवदत्तम्'— नाटक का संक्षिप्त परिचय दीजिए-

उत्तर- ***'स्वप्नवासवदत्तम्' — नाटक का संक्षिप्त परिचय***

संस्कृत नाट्य-साहित्य में महाकवि भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्' एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं कलात्मक षडङ्कीय नाटक है। वत्सराज उदयन के जीवन पर आधारित इसकी कथा में प्रेम, विरह, त्याग, राज्यनीति और कर्तव्य का ऐसा मनोरम समन्वय हुआ है, जिसमें बाह्य राजनीतिक परिस्थितियों के साथ पात्रों के अन्तर्मन का द्वन्द्व भी समान रूप से मुखरित होता है। नाटक का कथा-सम्बन्ध भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' से है और इसकी कथा-परम्परा का आधार प्राचीन बृहत्कथा में प्राप्त उदयन-कथा से सम्बद्ध माना जाता है।

नाटक की कथा का केन्द्र वत्सराज उदयन और उसकी प्राणप्रिया पत्नी वासवदत्ता हैं। उदयन का राज्य राजनीतिक संकट में पड़ जाता है। उसके महामन्त्री यौगन्धरायण की दूरदर्शी योजना है कि मगधराज से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके उदयन की राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ किया जाए। इसके लिए वासवदत्ता के जीवित रहते हुए भी उसके अग्निदग्ध होने का मिथ्या समाचार प्रसारित किया जाता है और उदयन का विवाह मगधराजकुमारी पद्मावती से कराया जाता है। वासवदत्ता स्वयं अवन्तिका के छद्मवेश में पद्मावती के संरक्षण में रहती है और अपने व्यक्तिगत सुख की उपेक्षा करके पति तथा राज्य के हित में इस योजना को सफल होने देती है।

यहीं से नाटक का मूल भावात्मक द्वन्द्व उभरता है। उदयन के लिए वासवदत्ता मृत है, जबकि वासवदत्ता उसके जीवन के अत्यन्त समीप होते हुए भी उसके लिए स्वयं को प्रकट नहीं कर सकती। एक ओर यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना अपने उद्देश्य की ओर बढ़ती है, दूसरी ओर उदयन के हृदय में वासवदत्ता की स्मृति और उसके प्रति प्रेम निरन्तर जीवित रहता है। पद्मावती का उदार चरित्र तथा वासवदत्ता का अद्भुत आत्मसंयम इस भाव-संघर्ष को और अधिक मार्मिक बनाते हैं। इस प्रकार नाटक में बाह्य घटनाओं से अधिक महत्त्व पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, प्रेम और त्याग को प्राप्त होता है।

नाटक का शीर्षक 'स्वप्नवासवदत्तम्' उसके प्रसिद्ध स्वप्न-प्रसंग से विशेष रूप से सार्थक होता है। वासवदत्ता से वियोगग्रस्त उदयन को एक अवसर पर वह अपने समीप दिखाई देती है, किन्तु वह उसे स्वप्न समझता है। इस प्रसंग में उसकी वासवदत्ता के प्रति अनन्य प्रेमानुभूति और विरह-वेदना चरम पर पहुँचती है। अन्ततः परिस्थितियों का रहस्य उद्घाटित होता है और वासवदत्ता तथा उदयन का पुनर्मिलन होता है। इस सुखान्त परिणति से नाटक में संचित करुणा और तनाव को भावपूर्ण समाधान प्राप्त होता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वासवदत्ता नाटक की भावात्मक आत्मा है। उसका प्रेम अधिकार-भाव से ऊपर उठकर त्याग और आत्मसंयम का रूप धारण करता है। उदयन के माध्यम से प्रेम और विरह से व्याकुल मानव-हृदय का चित्रण हुआ है, जबकि यौगन्धरायण राजनीति, स्वामिभक्ति और दूरदर्शिता का प्रतिनिधि है। पद्मावती अपने सौम्य, उदार और सहृदय व्यक्तित्व से नाटक के मानवीय पक्ष को समृद्ध करती है।

भास की नाट्यप्रतिभा का परिचय नाटक की कथावस्तु-संयोजना, नाटकीय कौतूहल, स्वाभाविक संवाद, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण तथा करुण और विप्रलम्भ-शृङ्गार की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति में मिलता है। विशेषतः

वासवदत्ता का छद्मवेश, उदयन का स्थायी प्रेम, यौगन्धरायण की योजना और स्वप्न-दृश्य नाटक को विशिष्ट नाटकीय गरिमा प्रदान करते हैं।

उपसंहार

अतः 'स्वप्नवासवदत्तम्' को केवल उदयन-वासवदत्ता की प्रेमकथा मानना उसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा। यह ऐसा नाटक है जिसमें प्रेम के लिए त्याग, राज्य के लिए आत्मसंयम और कर्तव्य के लिए व्यक्तिगत सुख का विसर्जन एक ही भाव-धारा में प्रवाहित होते हैं। भास ने राजनीति की कठोर भूमि पर प्रेम और मानवीय संवेदना का ऐसा कोमल संसार रचा है, जहाँ अन्ततः त्याग से परिष्कृत प्रेम की विजय होती है।यह संस्करण पिछले वाले से बेहतर है, क्योंकि इसमें नाटक का परिचय केवल घटनाओं की सूची के रूप में नहीं, बल्कि उसके मर्म और नाटकीय अन्तःसंघर्ष के साथ प्रस्तुत हुआ है। परीक्षा में इसे "नाटक का परिचय" के उत्तर के रूप में सीधे लिखा जा सकता है।

प्रश्न- स्वप्नवासवदत्तम्'— नाटक का प्रतिपाद्य विषय प्रस्तुत दीजिए-

उत्तर- 'स्वप्नवासवदत्तम्' — नाटक का प्रतिपाद्य विषय

प्रस्तावना

महाकवि भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्' केवल उदयन और वासवदत्ता की प्रणय-कथा नहीं, बल्कि प्रेम और कर्तव्य, व्यक्तिगत सुख और राज्यहित, भावना और राजनीति के परस्पर संघर्ष एवं समन्वय का सशक्त नाटक है। उदयन के राज्य की राजनीतिक सुरक्षा के लिए वासवदत्ता को अपने दाम्पत्य-सुख का त्याग करना पड़ता है; वह जीवित होते हुए भी मृत घोषित होकर छद्मवेश में रहती है और अपने पति के हित में अपने ही प्रेम की परीक्षा स्वीकार करती है। इस मूल परिस्थिति के माध्यम से भास ने प्रेम को केवल भावुकता न रहने देकर त्याग, धैर्य और कर्तव्यनिष्ठा से उदात्त बनाया है। यही नाटक के प्रतिपाद्य का मूल आधार है।

***१. प्रेम की उदात्तता और त्याग**:- नाटक का प्रधान प्रतिपाद्य उदयन और वासवदत्ता का अनन्य दाम्पत्य-प्रेम है। वासवदत्ता के लिए प्रेम केवल साथ रहने की आकांक्षा नहीं है; वह पति के हित और सुख के लिए अपने व्यक्तिगत अधिकारों तक का त्याग करती है। अपने पति को दूसरी स्त्री के साथ विवाह करते देखना उसके लिए अत्यन्त पीड़ादायक है, फिर भी वह राजनीतिक योजना को सफल होने देती है। इस प्रकार उसका प्रेम अधिकार से ऊपर उठकर आत्मत्याग का रूप ग्रहण करता है।*

***२. राज्यहित की प्रधानता**:- नाटक में व्यक्तिगत सुख पर राज्यहित की प्राथमिकता अत्यन्त स्पष्ट है। यौगन्धरायण की सम्पूर्ण योजना उदयन के राज्य और राजनीतिक प्रतिष्ठा को पुनः सुदृढ़ करने के उद्देश्य से संचालित होती है। वासवदत्ता भी इस व्यापक उद्देश्य को समझकर अपने व्यक्तिगत जीवन को उसके लिए समर्पित कर देती है। इस प्रकार नाटक यह आदर्श प्रस्तुत करता है कि शासक और उसके निकटस्थ व्यक्तियों का जीवन केवल निजी सुख के लिए नहीं, बल्कि राज्य और व्यापक हित के लिए भी समर्पित होना चाहिए।*

***३.यौगन्धरायण की राजनीति और स्वामिभक्ति**:- यौगन्धरायण नाटक में राजनीतिक दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता और स्वामिनिष्ठा का प्रतिनिधि है। वह परिस्थिति की जटिलता को समझकर ऐसी योजना बनाता है, जिसमें उदयन की राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ हो सके और वासवदत्ता की सुरक्षा भी बनी रहे। उसकी कूटनीति व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित नहीं,*

बल्कि अपने स्वामी और राज्य के प्रति निष्ठा से प्रेरित है। इस प्रकार भास ने राजनीति को केवल छल-कपट न दिखाकर राज्यधर्म से सम्बद्ध उत्तरदायित्वपूर्ण नीति के रूप में भी प्रस्तुत किया है।

४. वासवदत्ता का त्यागमयी नारी-चरित्र:- नाटक की भावात्मक आत्मा वासवदत्ता है। उसका चरित्र प्रेम, धैर्य, आत्मसंयम, त्याग और उदारता का अद्भुत समन्वय है। वह स्वयं को छिपाकर रहती है, अपने पति के सामने भी अपने वास्तविक रूप का उद्घाटन नहीं करती और पद्मावती के प्रति भी कटुता नहीं रखती। उसका मौन त्याग नाटक की करुणा को गहराई प्रदान करता है। इस प्रकार वासवदत्ता संस्कृत नाट्य-साहित्य में उदात्त प्रेम और त्याग की आदर्श नायिका के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

५.पद्मावती का उदार एवं सहृदय चरित्र:- पद्मावती का चरित्र भी नाटक की मानवीय संवेदना को व्यापक बनाता है। वह वासवदत्ता के वास्तविक परिचय से अनभिज्ञ रहते हुए भी उसके प्रति स्नेह और सम्मान का व्यवहार करती है। इस प्रकार भास ने दोनों स्त्रियों के सम्बन्ध को केवल ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विता पर आधारित न करके सहृदयता, उदारता और नारी-सौहार्द से युक्त बनाया है।

६.प्रेम-विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति:- नाटक में विप्रलम्भ-शृङ्गार अत्यन्त प्रभावशाली है। उदयन वासवदत्ता को मृत समझता है, जबकि वासवदत्ता उसके समीप रहकर भी स्वयं को प्रकट नहीं कर सकती। इस परिस्थिति से उत्पन्न विरह, स्मृति और मिलन की उत्कंठा नाटक की भावात्मक शक्ति को बढ़ाती है। यहाँ वियोग प्रेम को नष्ट नहीं करता, बल्कि उसे और अधिक गहन एवं पवित्र बनाता है।

७.स्वप्न और यथार्थ का मनोवैज्ञानिक समन्वय:-नाटक का प्रसिद्ध स्वप्न-प्रसंग प्रेम और विरह की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। उदयन को वासवदत्ता का सान्निध्य प्राप्त होता है, पर परिस्थितियों के कारण वह उस अनुभव को स्वप्न मानता है। वास्तव में यह स्वप्न उसके मन में वासवदत्ता की स्थायी उपस्थिति का प्रतीक है। यहाँ भास ने मन की अनुभूति और बाह्य यथार्थ के बीच अत्यन्त प्रभावपूर्ण नाटकीय सम्बन्ध स्थापित किया है।

८.कर्तव्य और भावना का अन्तर्द्वन्द्व:- नाटक के पात्र निरन्तर व्यक्तिगत भावना और कर्तव्य के बीच संघर्ष करते दिखाई देते हैं। उदयन का वासवदत्ता के प्रति प्रेम, वासवदत्ता का पति और राज्य के लिए त्याग तथा यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना—इन सबमें यही अन्तर्द्वन्द्व सक्रिय है। भास की विशेषता यह है कि वे इस संघर्ष में किसी एक पक्ष को सरलता से नकारते नहीं, बल्कि दोनों को मानवीय और नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं।

९.सुखान्त परिणति और प्रेम की विजय:- अनेक संकटों, छलावरण और वियोग के बाद अन्ततः सत्य प्रकट होता है और उदयन तथा वासवदत्ता का पुनर्मिलन होता है। इस प्रकार नाटक का सुखान्त केवल कथानक का समाधान नहीं है, बल्कि उस प्रेम की विजय का प्रतीक है जिसने विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी पवित्रता बनाए रखी। राजनीतिक उद्देश्य भी पूरा होता है और व्यक्तिगत सम्बन्ध भी पुनः स्थापित होते हैं। इस प्रकार नाटक में राजनीतिक सफलता और प्रेम की पुनर्स्थापना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

१०. मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा:- समग्रतः नाटक में प्रेम, त्याग, निष्ठा, स्वामिभक्ति, कर्तव्यपरायणता, धैर्य, उदारता और राजनीतिक दूरदर्शिता जैसे मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। भास की दृष्टि में महान् व्यक्ति वह है जो अपने

निजी हित से ऊपर उठकर प्रियजन तथा व्यापक हित के लिए त्याग कर सके। इसी कारण नाटक की कथा प्राचीन राजनीतिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध होते हुए भी अपनी मानवीय संवेदना के कारण आज भी प्रभावशाली प्रतीत होती है।

उपसंहार

अतः 'स्वप्नवासवदत्तम्' का मूल प्रतिपाद्य त्याग से उदात्त बने प्रेम और कर्तव्य से निर्देशित जीवन की प्रतिष्ठा है। भास ने वासवदत्ता के आत्मत्याग, उदयन के अविचल प्रेम, यौगन्धरायण की राज्यनिष्ठ नीति और पद्मावती की उदारता के माध्यम से यह दिखाया है कि सच्चा प्रेम परिस्थितियों से पराजित नहीं होता; वह त्याग और धैर्य के द्वारा और अधिक गरिमामय बनता है। इसी प्रेम की अन्ततः पुनर्स्थापना नाटक को करुणा से आनन्द की ओर ले जाकर उसकी भावात्मक पूर्णता सिद्ध करती है।

प्रश्न- स्वप्नवासवदत्तम्'— नाटक का अंकानुसार सारांश प्रस्तुत दीजिए-

उत्तर- स्वप्नवासवदत्तम्'— नाटक का अंकानुसार सारांश

प्रस्तावना

महाकवि भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्' वत्सराज उदयन और उसकी प्राणप्रिया वासवदत्ता के प्रेम-विरह की पृष्ठभूमि पर विकसित षडङ्कीय नाटक है। इसके कथानक में उदयन के राज्य की पुनर्स्थापना के लिए यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना, वासवदत्ता का आत्मत्याग, पद्मावती से उदयन का विवाह, दाम्पत्य-विरह और अन्ततः वासवदत्ता के पुनः प्राप्त होने की कथा क्रमशः विकसित होती है। इस प्रकार प्रत्येक अंक नाटक की मूल कथा को एक नई नाटकीय अवस्था की ओर ले जाता है।

***प्रथम अंक — लावाणक-प्रसंग एवं वासवदत्ता का पद्मावती के पास न्यास**:- प्रथमाङ्क में यौगन्धरायण परिव्राजक-वेश में तथा वासवदत्ता आवन्तिका के छद्मवेश में दिखाई देती है। वे लावाणक के आश्रम-प्रदेश में पहुँचते हैं, जहाँ मगधराजकुमारी पद्मावती भी आती है। यौगन्धरायण पद्मावती को अपने स्वामी उदयन की भावी पत्नी बनाने की राजनीतिक योजना को सफल करने के उद्देश्य से वासवदत्ता को अपनी भगिनी बताकर उसके संरक्षण में रखने का उपाय करता है। पद्मावती उदारतापूर्वक उसकी देखभाल स्वीकार कर लेती है।*

इसी अंक में एक ब्रह्मचारी लावाणक में घटी उस घटना का समाचार सुनाता है कि उदयन की पत्नी वासवदत्ता ग्राम-दाह में दग्ध हो गई और उसे बचाने के प्रयास में यौगन्धरायण भी अग्नि में प्रविष्ट हुआ। यह समाचार सुनकर वासवदत्ता के लिए अपने जीवित होने की स्थिति में भी मृत समझे जाने का करुण विडम्बनापूर्ण प्रसंग उपस्थित होता है। इस प्रकार प्रथमाङ्क आगे होने वाले पद्मावती-विवाह और वासवदत्ता के छद्मजीवन की आधारभूमि तैयार करता है।
***मुख्य भाव**: राजनीतिक योजना, आत्मत्याग और करुण विडम्बना।*

***द्वितीय अंक — पद्मावती-विवाह की तैयारी**:- द्वितीयाङ्क में पद्मावती के विवाह की तैयारियाँ तीव्र हो जाती हैं। पद्मावती अपनी सखियों तथा वासवदत्ता के साथ क्रीड़ा करती है। वार्तालाप के क्रम में पद्मावती उदयन के गुणों के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करती है। वासवदत्ता जब यह सुनती है कि पद्मावती उसी उदयन को पति रूप में प्राप्त करने वाली है, तब वह अपने वास्तविक सम्बन्ध को छिपाते हुए भी भीतर से अत्यन्त व्यथित होती है।*

वासवदत्ता उदयन के रूप, गुण और स्वभाव की प्रशंसा करती है, क्योंकि वह स्वयं उसके प्रति अनन्य प्रेम रखती है। विवाह के लिए तत्काल की जा रही तैयारियाँ उसके हृदय को और अधिक पीड़ा देती हैं। इस प्रकार इस अंक में बाह्य रूप से विवाहोत्सव का उल्लास और वासवदत्ता के अन्तःकरण में वियोग-वेदना—इन दोनों का मार्मिक विरोध दिखाई देता है।

मुख्य भाव: *विप्रलम्भ-शृङ्गार, अन्तर्द्वन्द्व और त्याग।*

तृतीय अंक — विवाहोत्सव और वासवदत्ता का दाम्पत्य-विरह:- *तृतीयाङ्क में पद्मावती के विवाह का उत्सव आरम्भ हो चुका है। वासवदत्ता अन्तःपुर के उत्सवपूर्ण वातावरण से हटकर प्रमदवन में आती है। वहाँ वह अपने भाग्य पर विचार करती हुई उदयन के प्रति अपने अनन्य प्रेम और वियोग की पीड़ा व्यक्त करती है। उसके लिए सबसे बड़ा दुःख यह है कि उसका अपना पति अब उसके लिए "परकीय" हो गया है। पद्मावती की सखी उससे कौतुकमाला गूँथने के लिए कहती है। वासवदत्ता को स्मरण होता है कि ऐसी सेवाएँ वह स्वयं उदयन के लिए किया करती थी। जब उसे उदयन के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनाई देती है, तब उसका अन्तःकरण और अधिक व्याकुल हो उठता है। यहाँ वासवदत्ता का मौन प्रेम, आत्मसंयम और नियति के प्रति विवशता अत्यन्त मार्मिक रूप में सामने आती है।*

मुख्य भाव: *वियोगजन्य करुणा और आत्मसंयम।*

चतुर्थ अंक — प्रमदवन में उदयन-वासवदत्ता का अप्रत्यक्ष सान्निध्य:- *चतुर्थाङ्क में उदयन और विदूषक वसन्तक प्रमदवन में आते हैं। उदयन वासवदत्ता के वियोग को स्मरण करते हुए उसके गुणों और अपने प्रेम की चर्चा करता है। इसी समय पद्मावती और आवन्तिका-वेशधारिणी वासवदत्ता भी उसी उद्यान में उपस्थित होती हैं। परिस्थितियों के कारण वासवदत्ता उदयन को सामने देखकर भी स्वयं को प्रकट नहीं कर सकती।*

विदूषक के प्रश्नों और उदयन के उत्तरों से स्पष्ट होता है कि पद्मावती के प्रति सम्मान और स्नेह होते हुए भी उदयन का हृदय अभी वासवदत्ता से ही बँधा हुआ है। वह स्वीकार करता है कि पद्मावती रूप, शील और माधुर्य में अत्यन्त सम्माननीय है, किन्तु उसका मन अभी भी वासवदत्ता से बँधा है। इस प्रकार यह अंक नाटक के प्रेम-विरह को अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक गहराई प्रदान करता है।

मुख्य भाव: *अनन्य प्रेम, स्मृति और मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व।*

पञ्चम अंक — स्वप्न-दर्शन और वासवदत्ता का साक्षात् सान्निध्य:- *पञ्चमाङ्क नाटक का अत्यन्त मार्मिक और भावोत्कर्षपूर्ण अंक है। पद्मावती अस्वस्थ है और उसके लिए समुद्रगृह में शय्या की व्यवस्था की जाती है। आवन्तिका-वेशधारिणी वासवदत्ता उसकी सेवा के लिए वहाँ पहुँचती है। पद्मावती की शय्या पर बैठते हुए वासवदत्ता के मन में उसके प्रति स्नेह उत्पन्न होता है; वह उसके दुःख को देखकर करुणित होती है।*

उधर उदयन भी वहाँ पहुँचता है और वासवदत्ता की स्मृतियों से व्याकुल रहता है। निद्रा में वह वासवदत्ता को देखता है और उससे वार्तालाप करता है। वास्तव में वासवदत्ता उसके समीप उपस्थित है, पर उदयन उसे स्वप्न समझता है। दोनों के बीच हुआ यह क्षणिक साक्षात्कार नाटक की भावात्मक चरमावस्था है—वासवदत्ता अपने पति को सामने देखकर भी अपना वास्तविक परिचय नहीं देती और अन्ततः वहाँ से चली जाती है। जागने पर उदयन को अपने अनुभव पर विश्वास नहीं होता और वह पुनः वासवदत्ता के विरह में डूब जाता है। अंक के अन्त में उदयन को अपने राज्य की

पुनर्प्राप्ति के लिए युद्ध का समाचार मिलता है और वह अरुणि के विरुद्ध अभियान के लिए प्रस्थान करता है। इस प्रकार व्यक्तिगत वियोग के साथ राजनीतिक कथा भी निर्णायक अवस्था में पहुँचती है।

मुख्य भाव: *विप्रलम्भ-शृङ्गार, करुणा और स्वप्न-यथार्थ का नाटकीय समन्वय।*

षष्ठ अंक — घोषवती-वीणा, प्रत्यभिज्ञान और सुखान्त उपसंहार:- *षष्ठाङ्क में उदयन के जीवन में निर्णायक परिवर्तन आता है। उसे घोषवती वीणा प्राप्त होती है। वीणा के स्वर से उसे वासवदत्ता की स्मृति तीव्रता से जाग उठती है। इसी समय उज्जयिनी से वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा तथा काञ्चुकीय आते हैं। वे वासवदत्ता के सम्बन्ध में समाचार लेकर आए हैं। पद्मावती के माध्यम से वासवदत्ता को उदयन के सामने लाया जाता है। पहले उसे "न्यास" के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु धात्री उसे पहचान लेती है और उसके वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन हो जाता है। उदयन भी उसे पहचान लेता है। यौगन्धरायण अपनी योजना और वासवदत्ता को छिपाने के कारण हुए अपराध के लिए क्षमा माँगता है। उदयन उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है और स्वीकार करता है कि उसी की नीति और प्रयत्नों से वह संकट से उबरा है। पद्मावती भी वासवदत्ता के प्रति विनयपूर्वक क्षमा याचना करती है और वासवदत्ता उसे उदारतापूर्वक स्वीकार करती है। इस प्रकार वासवदत्ता और उदयन का पुनर्मिलन, राजनीतिक योजना की सफलता तथा पारिवारिक सौहार्द—तीनों की एक साथ सिद्धि होती है। अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक का सुखान्त उपसंहार होता है।*

मुख्य भाव: *प्रत्यभिज्ञान, पुनर्मिलन, कृतज्ञता और आनन्दपूर्ण समाधान।*

समग्र निष्कर्ष

'स्वप्नवासवदत्तम्' का अंक-विन्यास अत्यन्त क्रमबद्ध है। प्रथमाङ्क में योजना और वासवदत्ता का छद्मजीवन, द्वितीय–तृतीय में विवाह और वियोग की तीव्रता, चतुर्थ में उदयन के हृदय में वासवदत्ता के स्थायी प्रेम का उद्घाटन, पंचम में स्वप्न-दर्शन द्वारा भावोत्कर्ष और षष्ठ में प्रत्यभिज्ञान एवं पुनर्मिलन—इस क्रम से कथा क्रमशः संकट से समाधान की ओर अग्रसर होती है। इस दृष्टि से नाटक की सम्पूर्ण गति को इस सूत्र में स्मरण किया जा सकता है— राजनीतिक योजना ⟶ वासवदत्ता का त्याग ⟶ उदयन-पद्मावती विवाह ⟶ वियोग ⟶ स्वप्न-दर्शन ⟶ राज्यलाभ ⟶ प्रत्यभिज्ञान ⟶ पुनर्मिलन। यही क्रम भास की नाट्य-कौशलपूर्ण कथासंयोजना तथा प्रेम, त्याग और राज्यहित के समन्वय को स्पष्ट करता है।

प्रश्न- स्वप्नवासवदत्तम्'— नाटक के वैशिष्ट्य (विशेषतः प्रथम अंक) पर प्रकाश डालिए-

उत्तर- 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक का वैशिष्ट्य (विशेषतः प्रथम अंक)

प्रस्तावना

महाकवि भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्' संस्कृत नाट्य-साहित्य की उन विशिष्ट कृतियों में है, जहाँ प्रेम की कोमलता, त्याग की गरिमा, राजनीति की दूरदर्शिता और नाटकीय कौतूहल का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। नाटक की कथा उदयन और वासवदत्ता के दाम्पत्य-प्रेम को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ती है, किन्तु उसके विकास में यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना निर्णायक भूमिका निभाती है। विशेष रूप से प्रथमाङ्क में वासवदत्ता को मृत घोषित करने, उसे आवन्तिका के छद्मवेश में रखने और पद्मावती के संरक्षण में सौंपने की योजना के माध्यम से आगे की सम्पूर्ण कथा का

बीज आरोपित कर दिया जाता है। अतः प्रथमाङ्क केवल कथारम्भ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण नाटक की आधारभूमि और नाटकीय रहस्य का केन्द्र है।

***१. प्रथमाङ्क की कथावस्तु की आधार-भूमिका**:- प्रथमाङ्क में यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना सामने आती है। उदयन के राज्यहित की दृष्टि से मगधराज से सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। इसके लिए वासवदत्ता के जीवित रहते हुए भी उसके अग्निदग्ध होने का मिथ्या समाचार फैलाया जाता है। इस योजना के फलस्वरूप उदयन के लिए पद्मावती से विवाह का मार्ग प्रशस्त होता है। इस प्रकार प्रथमाङ्क में ही नाटक के राजनीतिक संघर्ष और व्यक्तिगत प्रेम-संघर्ष का मूल सूत्र स्थापित हो जाता है।*

***२.वासवदत्ता का छद्मवेश**:- प्रथमाङ्क की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में वासवदत्ता का 'आवन्तिका' के रूप में छद्मवेश उल्लेखनीय है। वह स्वयं अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर पद्मावती के संरक्षण में रहती है। यही छद्मवेश आगे चलकर अनेक नाटकीय परिस्थितियों और कौतूहल का कारण बनता है। इस व्यवस्था से भास एक अत्यन्त प्रभावी नाटकीय विडम्बना उत्पन्न करते हैं—दर्शक जानता है कि आवन्तिका वास्तव में वासवदत्ता है, जबकि नाटक के अनेक पात्र इस सत्य से अनभिज्ञ हैं।*

***३.नाटकीय कौतूहल और रहस्य**:- प्रथमाङ्क में भास ने आरम्भ से ही कौतूहल उत्पन्न करने की कुशलता दिखाई है। वासवदत्ता जीवित है, परन्तु संसार उसे मृत मानता है। वह अपने पति के समीप पहुँचने वाली परिस्थितियों में भी स्वयं को प्रकट नहीं कर सकती। इस रहस्य के कारण दर्शक निरन्तर यह जानने के लिए उत्सुक रहता है कि—*

***a-** वासवदत्ता कब पहचानी जाएगी*

***b-** उदयन को उसके जीवित होने का ज्ञान कब होगा?*

***c-** यौगन्धरायण की योजना सफल होगी या नहीं?*

इसी रहस्य की क्रमशः वृद्धि से नाटक का आकर्षण बना रहता है।

***४.राजनीतिक दूरदर्शिता और स्वामिभक्ति**:- प्रथमाङ्क में यौगन्धरायण का चरित्र विशेष रूप से उभरता है। उसकी योजना केवल कूटनीतिक चातुर्य का प्रदर्शन नहीं है; उसके पीछे अपने स्वामी उदयन के प्रति अटूट निष्ठा और राज्यहित की भावना है। वह ऐसी परिस्थिति निर्मित करता है जिसमें वासवदत्ता की सुरक्षा, पद्मावती से विवाह और उदयन के राजनीतिक भविष्य—तीनों को साधा जा सके। इस प्रकार प्रथमाङ्क में नीति, बुद्धि और स्वामिभक्ति का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।*

***५.वासवदत्ता के त्याग का प्रारम्भ**:- प्रथमाङ्क से ही वासवदत्ता के त्यागमय चरित्र की स्थापना हो जाती है। अपने जीवित रहते हुए भी स्वयं को मृत मान लिए जाने की पीड़ा वह सहन करती है। वह जानती है कि इस योजना का परिणाम उसके पति के दूसरे विवाह के रूप में सामने आएगा, फिर भी राज्यहित और उदयन के भविष्य के लिए वह इस कष्ट को स्वीकार करती है। इस प्रकार प्रथमाङ्क में ही उसके चरित्र की मूल विशेषता—प्रेम में अधिकार नहीं, बल्कि त्याग—स्थापित हो जाती है।*

***६.पद्मावती का उदार चरित्र**:-पद्मावती के संरक्षण में आवन्तिका का जाना केवल कथानक की आवश्यकता नहीं है,बल्कि उसके माध्यम से पद्मावती के सौम्य और उदार व्यक्तित्व की भूमिका भी तैयार होती है।आगे चलकर*

वासवदत्ता और पद्मावती के सम्बन्धों में जो सहृदयता दिखाई देती है,उसका आधार प्रथमाङ्क में ही निर्मित हो जाता है।

***७.करुणा और विप्रलम्भ-शृङ्गार की आधारभूमि**:- प्रथमाङ्क में वासवदत्ता के जीवित होते हुए भी उसके मृत घोषित होने की स्थिति अत्यन्त करुण विडम्बना उत्पन्न करती है। वह अपने पति से वियोग में है और पति उसे मृत समझकर वियोगी है। इस प्रकार दोनों के बीच वास्तविक प्रेम रहते हुए भी बाह्य रूप से मृत्यु और वियोग की दीवार खड़ी कर दी जाती है। यही परिस्थिति आगे चलकर नाटक के विप्रलम्भ-शृङ्गार को विकसित करती है।*

***८.नाटकीय विडम्बना का उत्कृष्ट प्रयोग**:- प्रथमाङ्क की एक महत्त्वपूर्ण कलात्मक विशेषता नाटकीय विडम्बना **(dramatic irony)** है। दर्शक वासवदत्ता और यौगन्धरायण की वास्तविक स्थिति से परिचित है, जबकि पद्मावती और अन्य पात्रों के लिए आवन्तिका एक सामान्य युवती है। इस ज्ञान-अज्ञान के अन्तर से संवादों और घटनाओं में विशेष नाटकीय प्रभाव उत्पन्न होता है।*

***९.कथासंयोजना की कुशलता**:- भास प्रथमाङ्क में ही आगे के सम्पूर्ण नाटक की आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण कर देते हैं। वासवदत्ता की मृत्यु का मिथ्या समाचार ⟶ आवन्तिका का छद्मवेश ⟶ पद्मावती के पास उसका संरक्षण ⟶ उदयन-पद्मावती विवाह की सम्भावना—इन घटनाओं की श्रृंखला अत्यन्त सुसंगठित है। इससे स्पष्ट होता है कि भास को कथानक के बीज को प्रारम्भ में ही रोपित करके क्रमशः उसके विकास और समाधान तक ले जाने की अद्भुत नाट्य-कला प्राप्त थी।*

***१०. प्रथमाङ्क में 'अग्निदाह' प्रसंग की नाटकीयता**:- वासवदत्ता और यौगन्धरायण के अग्निदाह का मिथ्या समाचार प्रथमाङ्क में अत्यन्त प्रभावशाली नाटकीय उपकरण है। एक ओर यह घटना उदयन और संसार के लिए वासवदत्ता की मृत्यु स्थापित करती है, दूसरी ओर दर्शक उसकी वास्तविकता जानता है। इस प्रकार मृत्यु का भ्रम ही आगे चलकर पुनर्मिलन की भूमिका बन जाता है।*

***११.नाटक का समग्र वैशिष्ट्य**: प्रथमाङ्क से आगे नाटक अनेक स्तरों पर विकसित होता है—*

प्रथमाङ्क — राजनीतिक योजना और छद्मवेश की स्थापना

द्वितीयाङ्क — पद्मावती-विवाह की तैयारी और वासवदत्ता का अन्तर्द्वन्द्व

तृतीयाङ्क — विवाहोत्सव और वासवदत्ता का वियोग

चतुर्थाङ्क — उदयन के हृदय में वासवदत्ता के प्रति स्थायी प्रेम का उद्घाटन

पञ्चमाङ्क — स्वप्न-दर्शन द्वारा भावात्मक चरमोत्कर्ष

षष्ठाङ्क — प्रत्यभिज्ञान, पुनर्मिलन और सुखान्त समाधान

इस क्रम से स्पष्ट है कि प्रथमाङ्क में आरोपित राजनीतिक योजना और छद्मवेश ही अन्ततः नाटक के सुखान्त तक पहुँचने वाले सम्पूर्ण घटनाचक्र का आधार बनते हैं।

***१२. भास की नाट्यकला**:- इस नाटक में भास की विशेष नाट्यप्रतिभा सरल किन्तु प्रभावशाली कथाविन्यास, स्वाभाविक संवाद, नाटकीय कौतूहल, चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओं के तीव्र विकास में दिखाई देती*

है। वे जटिल राजनीतिक परिस्थिति को मानवीय भावनाओं से जोड़कर प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि नाटक में राजनीति कभी नीरस नहीं होती और प्रेम कभी केवल भावुकता तक सीमित नहीं रहता।

निष्कर्ष

अतः 'स्वप्नवासवदत्तम्' का वैशिष्ट्य प्रेम, त्याग, राजनीति, स्वामिभक्ति, करुणा और नाटकीय कौतूहल के समन्वय में निहित है। विशेषतः प्रथमाङ्क में भास ने जिस कुशलता से वासवदत्ता के छद्मवेश, यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना और उदयन के भावी विवाह की आधारभूमि तैयार की है, वही आगे के समस्त नाटक को गति प्रदान करती है। इसीलिए प्रथमाङ्क को नाटक की कथात्मक एवं नाटकीय संरचना का बीजाङ्क कहना सर्वथा उचित है।

स्वप्नवासवदत्तम् : प्रथम अंक (प्रमुख श्लोकों की व्याख्या)

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥१॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत पद्य महाकवि भास विरचित स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रथमाङ्क के प्रारम्भ में प्रयुक्त नन्दी है। नान्दी के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता है और वह यह मंगलकामना करता है कि बलराम की शक्तिशाली एवं मनोहर भुजाएँ दर्शकों की रक्षा करें। मूल नाट्यपाठ में भी इस पद्य के वक्ता के रूप में सूत्रधार ही निर्दिष्ट है। इस नन्दी की विशेषता केवल मंगलकामना में नहीं है। भास ने अत्यन्त चतुराई से ऐसे समासों का प्रयोग किया है जिनसे बलराम की भुजाओं के वर्ण, बल, पूर्णता और सौन्दर्य का चित्र उपस्थित होता है तथा साथ ही उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक—नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम भी संकेतित हो जाते हैं। इस प्रकार नाटक के आरम्भ में ही कवि ने मंगलाचरण के साथ भावी कथावस्तु की सूक्ष्म सूचना भी दे दी है।

अर्थ:- बलराम की वे दोनों भुजाएँ आपकी रक्षा करें, जो उदित होते हुए नवीन चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एवं कान्तिमती हैं, आसव से प्राप्त बल के कारण अत्यन्त शक्तिशाली हैं, पूर्ण विकसित कमल के समान परिपूर्ण एवं शोभायुक्त हैं तथा वसन्त ऋतु के समान अत्यन्त मनोहर हैं।

कवि ने इन भुजाओं के बल और सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढंग से उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक—इन नाटक के प्रमुख पात्रों के नामों को भी पद्य में समाविष्ट कर दिया है। अतः यह नन्दी एक ओर बलराम की भुजाओं के द्वारा मंगल एवं रक्षण की कामना करती है और दूसरी ओर आगे विकसित होने वाली नाटकीय कथा तथा उसके प्रमुख पात्रों का संकेत भी कर देती है।

व्याख्या:- महाकवि भास ने नाटक के आरम्भ में ही अत्यन्त कलात्मक ढंग से मंगलाचरण प्रस्तुत किया है। वे बलराम की दोनों भुजाओं को मंगलकामना का विषय बनाते हुए कहते हैं कि वे भुजाएँ दर्शकों की रक्षा करें। उन भुजाओं की कान्ति उदित होते हुए नवीन चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है; वे आसव से प्राप्त बल के कारण अत्यन्त शक्तिशाली हैं; पूर्ण विकसित कमल की भाँति परिपूर्ण एवं शोभायुक्त हैं और वसन्त के समान मनोहर हैं। इस प्रकार भुजाओं में शौर्य, शक्ति, कान्ति और सौन्दर्य का एक साथ समन्वय दिखाई देता है। इस नन्दी का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य इसका शब्द-चमत्कार है। भास ने ऐसी समास-रचना की है कि बलराम की भुजाओं का वर्णन करते हुए ही उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक—इन चार प्रमुख पात्रों के नामों का संकेत हो जाता है। संस्कृत में एक ही पदरचना को भिन्न प्रकार से ग्रहण

करने पर अर्थ की विभिन्न सम्भावनाएँ उत्पन्न होती हैं; यही इस पद्य की अद्भुत चमत्कृति है। अतः यह नन्दी केवल परम्परागत मंगलाचरण नहीं है, बल्कि नाटक की भावी कथा का बीज-संकेत भी है। भास ने अत्यल्प शब्दों में मंगल, सौन्दर्य, शक्ति, शब्दवैचित्र्य और पात्र-संकेत—इन सभी को एक साथ बाँध दिया है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

नन्दी का सौन्दर्य — पद्य में मंगलकामना के साथ बलराम की भुजाओं का रमणीय वर्णन हुआ है।

मुद्रालंकार — उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती, वसन्तक आदि प्रमुख पात्रों के नामों का संकेत अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढंग से हुआ है।

उपमा-सौन्दर्य — नवीन चन्द्रमा तथा वसन्त आदि के माध्यम से भुजाओं की कान्ति एवं मनोहरता को उभारा गया है।

शब्दवैचित्र्य — दीर्घ एवं बहुविध अर्थसम्भावनायुक्त समासों के कारण पद्य में श्लेषात्मक चमत्कार उत्पन्न हुआ है।

गुण — पद्य में ओज और माधुर्य का सुन्दर समन्वय है—भुजाओं का बल ओज उत्पन्न करता है और चन्द्रमा, कमल तथा वसन्त के संकेत माधुर्य।

नाट्यगत महत्त्व — नन्दी मंगलकामना के साथ नाटक के प्रमुख पात्रों एवं भावी कथाविकास का संकेत करती है। इसलिए यह आगे आने वाली कथा की बीजभूमि भी तैयार करती है।

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासीच्छलाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥४॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत पद्य महाकवि भास विरचित स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। पद्मावती के सेवकों द्वारा तपोवनवासियों को हटाया जा रहा है। इस क्रम में वासवदत्ता, जो आवन्तिका के वेश में है, स्वयं भी उस अपमानजनक स्थिति से पीड़ित होती है और यौगन्धरायण से कहती है कि उसे इतना परिश्रम भी उतना कष्ट नहीं देता, जितना यह परिभव अर्थात् अपमान देता है। वासवदत्ता की इस पीड़ा को देखकर यौगन्धरायण उसे धैर्य बँधाता है। वह उसे उसके पूर्व गौरव की याद दिलाता है और आश्वस्त करता है कि यह स्थिति स्थायी नहीं है। समय बदलने पर उसके पति उदयन की विजय होगी और वह पुनः सम्मान एवं गौरव प्राप्त करेगी। इसी आश्वासन को पुष्ट करने के लिए वह संसार के परिवर्तनशील भाग्य की तुलना चक्र की घूमती हुई अर-पंक्तियों से करता है।

अर्थ:- यौगन्धरायण वासवदत्ता से कहता है—पहले भी तुमने अपनी इच्छा और मन के अनुकूल ऐसा ही गौरवपूर्ण जीवन बिताया था। अब कुछ समय के लिए विपरीत परिस्थिति आ गयी है, तो इससे चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पति उदयन की विजय होने पर तुम पुनः उसी प्रकार सम्मान और गौरव के साथ जीवन व्यतीत करोगी। क्योंकि समय के साथ संसार का भाग्य निरन्तर बदलता रहता है; जैसे घूमते हुए चक्र की अर-पंक्तियाँ कभी ऊपर और कभी नीचे आती हैं, उसी प्रकार मनुष्य का भाग्य भी कभी उन्नति और कभी अवनति को प्राप्त होता रहता है।

व्याख्या:- वासवदत्ता को वर्तमान अपमान से अत्यन्त दुःखी देखकर यौगन्धरायण उसे भविष्य के प्रति आश्वस्त करता है। वह पहले उसके अतीत की ओर संकेत करता है—वह कभी राजमहिषी के रूप में सम्मान और वैभव से युक्त जीवन व्यतीत करती थी। आज परिस्थितिवश उसे साधारण तपोवनवासी की भाँति रहना पड़ रहा है और राजकुमारी के

सेवकों द्वारा हटाया जा रहा है। किन्तु यह स्थिति स्थायी नहीं है। यौगन्धरायण का विश्वास है कि उदयन की विजय के साथ वासवदत्ता का खोया हुआ गौरव पुनः लौट आएगा। अपने इस विश्वास को वह एक अत्यन्त प्रभावशाली चक्र-दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करता है। संसार का भाग्य एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता। जैसे चक्र घूमता है तो उसकी अर-पंक्तियाँ क्रमशः ऊपर और नीचे होती रहती हैं, वैसे ही मनुष्य के जीवन में भी सुख-दुःख, उन्नति-अवनति तथा मान-अपमान का क्रम चलता रहता है। अतः वर्तमान दुःख से निराश नहीं होना चाहिए और पूर्व सुख को भी स्थायी नहीं समझना चाहिए। इस प्रकार यह पद्य केवल वासवदत्ता को सांत्वना देने वाला कथन नहीं, बल्कि जीवन की परिवर्तनशीलता का सार्वकालिक सत्य प्रस्तुत करने वाला अत्यन्त मार्मिक सुभाषित भी बन गया है। इस पद्य में इसी सामान्य सत्य के द्वारा वासवदत्ता की विशेष परिस्थिति का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार माना जाता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

अर्थान्तरन्यास अलंकार — वासवदत्ता के भविष्य के गौरव की विशेष बात को "भाग्य परिवर्तनशील है" इस सामान्य सत्य से पुष्ट किया गया है।

उपमा — भाग्य की परिवर्तनशील गति की तुलना चक्र की अर-पंक्ति से अत्यन्त सजीव ढंग से की गयी है।

दृष्टान्त-सौन्दर्य — चक्र के ऊपर-नीचे घूमने की स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा जीवन के सुख-दुःख का रहस्य सरलता से समझाया गया है।

करुण भाव — वासवदत्ता की वर्तमान दयनीय स्थिति से उत्पन्न पीड़ा की पृष्ठभूमि में सांत्वना का भाव अत्यन्त मार्मिक बन गया है।

वीर भाव की पूर्वभूमि — "विजयेन भर्तुः" में उदयन की भावी विजय का संकेत है, जो आगे नाटक की राजनीतिक कथा से जुड़ता है।

सुभाषित-सौन्दर्य — अंतिम दो चरण अपने आप में सार्वकालिक जीवन-सत्य के रूप में प्रसिद्ध हैं—भाग्य सदैव एक-सा नहीं रहता।

नाट्यगत महत्त्व — यह पद्य वासवदत्ता के मनोबल को बनाए रखने तथा आगे होने वाले घटनाक्रम के लिए आशा की भूमि तैयार करता है।

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडामिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥६॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत पद्य स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। पद्मावती के साथ आए राजकीय सेवक तपोवन में उपस्थित लोगों को हटाने लगते हैं। इससे तपोवन की स्वाभाविक शान्ति और आश्रमवासियों के कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है। काञ्चुकीय इस अनुचित व्यवहार को रोकते हुए पहले उन्हें समझाता है कि आश्रमवासियों के प्रति कठोरता नहीं करनी चाहिए। इसी क्रम में वह कहता है कि तपस्वियों को अपने धार्मिक कार्यों के लिए तीर्थ का जल, समिधा, पुष्प और दर्भ आदि वन से स्वतंत्रतापूर्वक लाने देना चाहिए। इसके बाद वह पद्मावती के धर्मप्रेमी स्वभाव का उल्लेख करता है—जो स्वयं धर्मपरायण है, वह तपस्वियों के धर्माचरण में बाधा डालना कैसे चाहेगी? अतः उन्हें रोकना न तो उचित है और न ही राजकुमारी की इच्छा के अनुकूल।

अर्थ:- *तपस्वीजन अपने धार्मिक कार्यों के लिए तीर्थ का जल, यज्ञोपयोगी समिधाएँ, पुष्प और दर्भ आदि वन से बिना किसी रोक-टोक के ले आएँ। धर्म में अनुरक्त राजकुमारी पद्मावती तपस्वियों के धर्माचरण में किसी प्रकार की बाधा डालना कदापि नहीं चाहेगी; क्योंकि तपस्वियों के प्रति धर्मानुकूल व्यवहार करना उसके कुल की परम्परागत मर्यादा है। अर्थात् काञ्चुकीय राजसेवकों को समझाता है कि राजकुमारी की सुविधा के लिए आश्रमवासियों को उनके आवश्यक धार्मिक कार्यों से रोकना उचित नहीं है। पद्मावती स्वयं धर्मपरायण है और अपने कुल की परम्परा के अनुसार तपस्वियों का सम्मान करती है।*

व्याख्या:- *काञ्चुकीय आश्रमवासियों के प्रति राजकीय सेवकों के कठोर व्यवहार को अनुचित बताकर उनके लिए पूर्ण स्वतंत्रता की बात करता है। तपस्वी अपने धार्मिक अनुष्ठानों के लिए तीर्थ का जल, समिधाएँ, पुष्प और दर्भ आदि वन से प्राप्त करते हैं। ये वस्तुएँ उनके दैनिक धार्मिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। अतः राजकुमारी के आगमन के कारण उन्हें वन में जाने अथवा इन वस्तुओं को लाने से रोकना उनके धर्माचरण में प्रत्यक्ष बाधा डालना होगा। इसलिए काञ्चुकीय स्पष्ट निर्देश देता है कि तपस्वी इन वस्तुओं को "स्वैरम्", अर्थात् स्वतंत्रतापूर्वक, वन से लाते रहें। इसके बाद काञ्चुकीय अपने तर्क को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए पद्मावती के चरित्र का सहारा लेता है। वह कहता है कि "धर्मप्रिया नृपसुता" तपस्वियों के धर्म में पीड़ा उत्पन्न करना कभी नहीं चाहेगी। तपस्वियों के प्रति सम्मान और उनके धर्मकार्य में सहायता करना उसके कुल का संस्कार और परम्परागत व्रत है। इस प्रकार काञ्चुकीय राजसेवकों को केवल आदेश नहीं देता, बल्कि पद्मावती के धर्मपरायण चरित्र की ओर संकेत करके उन्हें स्वयं उचित आचरण करने के लिए प्रेरित करता है। यही इस पद्य की तारतम्यपूर्ण विशेषता है।*

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

स्वभावोक्ति —*तपस्वियों के जीवन में आवश्यक तीर्थजल,समिधा, पुष्प और दर्भ आदि का स्वाभाविक वर्णन हुआ है।*

चरित्र-चित्रण — *"धर्मप्रिया नृपसुता" कहकर पद्मावती के धर्मपरायण एवं उदार चरित्र का पूर्वसंकेत मिलता है।*

नीतिपरकता — *धार्मिक व्यक्तियों के धर्माचरण में बाधा न डालने तथा उनके प्रति सम्मान रखने की नीति प्रस्तुत हुई है।*

शब्द-सौन्दर्य — *"स्वैरम्" शब्द तपस्वियों को पूर्ण स्वतंत्रता देने के भाव को प्रभावशाली बनाता है।*

नाट्यगत सौन्दर्य — *पद्मावती के प्रत्यक्ष चरित्र-प्रवेश से पहले ही उसके धर्मप्रिय एवं तपस्वी-सम्मानकारी स्वभाव की सूचना मिल जाती है।*

कथावस्तु-सूचना — *आगे पद्मावती और वासवदत्ता के बीच विकसित होने वाले सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध की नैतिक पृष्ठभूमि यहाँ तैयार होती है।*

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥७॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत पद्य महाकवि भास विरचित स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। पद्मावती तपोवन में आती है। उसे देखकर परिव्राजक-वेशधारी यौगन्धरायण पहचान लेता है कि यही मगधराज की पुत्री पद्मावती है। उसे यह भी ज्ञात है कि पुष्पक, भद्र आदि देशिकों ने भविष्यवाणी की है कि पद्मावती उसके स्वामी उदयन की पत्नी बनेगी। यह जानकर यौगन्धरायण मन ही मन विचार करता है कि सामान्यतः किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष या सम्मान उसके*

मन में बनी धारणा से उत्पन्न होता है। चूँकि पद्मावती के विषय में उसके मन में यह धारणा बन चुकी है कि वह उसके स्वामी उदयन की भावी पत्नी होगी, इसलिए उसके प्रति उसके मन में पहले से ही एक विशेष आत्मीयता और अपनत्व उत्पन्न हो गया है। इसी मनोभाव को वह प्रस्तुत पद्य में व्यक्त करता है।

अर्थ:- *किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष अथवा अत्यधिक सम्मान मन में बनी हुई धारणा से ही उत्पन्न होता है। मेरे मन में यह धारणा है कि यह पद्मावती मेरे स्वामी उदयन की भावी पत्नी बनेगी; इसी अपेक्षा के कारण इसके प्रति मेरे मन में अभी से बहुत अधिक आत्मीयता और अपनत्व का भाव उत्पन्न हो गया है। अर्थात् यौगन्धरायण के मन में पद्मावती के प्रति आत्मीयता का कारण उसका व्यक्तिगत परिचय नहीं, बल्कि उसे उदयन की भावी पत्नी मान लेने की मानसिक धारणा है।*

व्याख्या:-*यौगन्धरायण जब पद्मावती को देखता है, तब उसके मन में उसके प्रति तत्काल एक विशेष आत्मीयता उत्पन्न हो जाती है। वह स्वयं इसका मनोवैज्ञानिक कारण खोजता है। उसका कहना है कि मनुष्य के मन में किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष हो या बहुमान, दोनों किसी-न-किसी मानसिक धारणा अथवा संकल्प पर आधारित होते हैं। अर्थात् मन पहले किसी व्यक्ति के विषय में एक विचार या धारणा बनाता है और उसी के अनुरूप उसके प्रति अपना भाव निर्मित करता है। यौगन्धरायण के मन में पद्मावती के विषय में पहले ही यह धारणा बन चुकी है कि वह उसके स्वामी उदयन की भावी पत्नी होगी। इसलिए उसे देखते ही यौगन्धरायण के मन में उसके प्रति अपनत्व का भाव जाग उठता है। यह आत्मीयता केवल व्यक्तिगत स्नेह नहीं है, बल्कि स्वामी के प्रति उसकी अनन्य निष्ठा से उत्पन्न है—जो उदयन के जीवन से सम्बन्धित है,उसके प्रति यौगन्धरायण का मन स्वाभाविक रूप से अनुरक्त हो जाता है। आगे पद्मावती भी उसके इस सम्मानपूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर स्वयं को उसके प्रति अधिक विश्वासपूर्वक प्रस्तुत करती है। मूल पाठ में इसके तुरन्त बाद वासवदत्ता भी मन ही मन कहती है कि "राजदारिका" सुनकर उसके भीतर भी भगिनीक-स्नेह उत्पन्न हो रहा है।*

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

मनोवैज्ञानिक सौन्दर्य — *भास ने यह दिखाया है कि मन में बनी धारणा किस प्रकार किसी व्यक्ति के प्रति हमारे भाव को जन्म देती है।*

अर्थान्तरन्यास अलंकार — *पहले सामान्य सिद्धान्त कहा गया है—"प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते"—और फिर उसी का विशेष उदाहरण यौगन्धरायण के पद्मावती के प्रति आत्मीय भाव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि इस पद्य में अर्थान्तरन्यास माना जाता है।*

चरित्र-चित्रण — *यौगन्धरायण की अपने स्वामी उदयन के प्रति गहरी निष्ठा और राजनीतिक दूरदृष्टि प्रकट होती है।*

सूक्ष्म भाव-संक्रमण — *पद्मावती अभी उसके लिए अपरिचिता है, फिर भी भावी सम्बन्ध की कल्पना के कारण वह उसे आत्मीय मानने लगता है।*

नाट्यगत सौन्दर्य — *पद्य आगे होने वाले उदयन–पद्मावती विवाह तथा यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना की पृष्ठभूमि तैयार करता है।*

रसगत संकेत — *पद्य में प्रत्यक्षतः शृङ्गार नहीं, बल्कि आत्मीयता और स्नेह का स्थायी भावात्मक आधार निर्मित होता है।*

कार्यं नैवार्थेनापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।
धीरा कान्येयं दृष्टधर्मप्रचाराशक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥९॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत पद्य स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथमाङ्क में यौगन्धरायण के मुख से कहा गया है। वह परिव्राजक के वेश में वासवदत्ता को लेकर तपोवन में आया है। पद्मावती तपस्वियों की आवश्यकताओं को जानकर उन्हें उनकी इच्छित वस्तुएँ देने की घोषणा करती है। इस अवसर पर यौगन्धरायण के सामने अपनी योजना को पूरा करने का मार्ग खुलता दिखाई देता है। यौगन्धरायण सोचता है कि उसने काषाय-वेश न तो धन के लिए, न भोग-विलास के लिए और न ही वस्त्र आदि प्राप्त करने के लिए धारण किया है। उसका वास्तविक उद्देश्य अपनी "भगिनी" अर्थात् वासवदत्ता की रक्षा करना है। अब वह पद्मावती को देखकर विचार करता है कि यह राजकुमारी धैर्यशालिनी, धर्मपरायण और सदाचरण को समझने वाली प्रतीत होती है; अतः क्या यह मेरी भगिनी के चरित्र की रक्षा करने में समर्थ होगी? इसी विचार से वह पद्मावती के हाथों वासवदत्ता को सौंपने की सम्भावना पर विचार करता है।*

अर्थ:- *मैंने यह काषाय-वेश न तो धन प्राप्त करने के लिए धारण किया है, न भोग-विलास के लिए और न ही वस्त्र आदि के लिए। मेरा उद्देश्य तो अपनी भगिनी की रक्षा करना है। परन्तु यह धैर्यशालिनी और धर्माचरण को समझने वाली स्त्री कौन है? क्या यह मेरी भगिनी के चरित्र और शील की रक्षा करने में समर्थ होगी?, अर्थात् यौगन्धरायण पद्मावती को देखकर उसके धैर्य, धर्मप्रियता और सदाचार से प्रभावित होता है और उसके मन में विश्वास उत्पन्न होता है कि शायद वह वासवदत्ता को अपने संरक्षण में रखकर उसके शील की रक्षा कर सकेगी।*

व्याख्या:- *यौगन्धरायण के काषाय-वेश के पीछे कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। वह स्पष्ट करता है कि उसने परिव्राजक का रूप अर्थ, भोग अथवा वस्त्र जैसे सांसारिक लाभों के लिए नहीं अपनाया है। उसका एकमात्र उद्देश्य अपनी "भगिनी" की रक्षा करना है। यहाँ "भगिनी" वास्तव में उसकी राजनीतिक योजना के अनुसार उसके साथ लाई गयी वासवदत्ता है। इस प्रकार उसके वेश के पीछे छिपा हुआ कर्तव्य और निष्ठा प्रकट होता है।*

अब पद्मावती को देखकर यौगन्धरायण उसके व्यक्तित्व का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। उसे पद्मावती में धैर्य, धर्मज्ञान और सदाचार के लक्षण दिखाई देते हैं। इसलिए उसके मन में यह विचार आता है कि यदि वासवदत्ता को इस राजकुमारी के संरक्षण में रखा जाए, तो उसका शील और सम्मान सुरक्षित रह सकता है। इस प्रकार यौगन्धरायण की दृष्टि में पद्मावती केवल मगधराज की पुत्री नहीं रहती, बल्कि वासवदत्ता की भावी रक्षिका के रूप में दिखाई देने लगती है। यही विचार आगे चलकर उसकी सम्पूर्ण राजनीतिक योजना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार बनता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

मनोवैज्ञानिक सौन्दर्य — *यौगन्धरायण पद्मावती को देखकर उसके चरित्र का सूक्ष्म परीक्षण करता है।*

चरित्र-चित्रण — *उसके शब्दों से उसकी निःस्वार्थता, कर्तव्यनिष्ठा और वासवदत्ता के प्रति संरक्षण-भाव स्पष्ट होता है।*

प्रश्नात्मक शैली — *"का इयं...?" के द्वारा उसके मन में उत्पन्न विचार को स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया गया है।*

गुण — *यौगन्धरायण के चरित्र में धैर्य, विवेक और दूरदर्शिता का प्रकाश होता है।*

नाट्यगत महत्त्व — *यही विचार आगे चलकर वासवदत्ता को पद्मावती के संरक्षण में सौंपने की योजना का आधार बनता है।*

भाव-सौन्दर्य — बाहरी रूप से परिव्राजक और भीतर से कुशल राजनीतिज्ञ तथा संरक्षक—यौगन्धरायण के इस द्वैध व्यक्तित्व का सुन्दर उद्घाटन होता है।

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम्॥१०॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत पद्य स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथमाङ्क में यौगन्धरायण के मुख से कहा गया है। पद्मावती की धर्मपरायणता और तपस्वियों के प्रति उसकी उदारता देखकर यौगन्धरायण को विश्वास होने लगता है कि वासवदत्ता को उसके संरक्षण में रखना सुरक्षित होगा। वह अब अपनी वास्तविक योजना को आगे बढ़ाने के विषय में सोचता है। यौगन्धरायण के लिए वासवदत्ता केवल कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, बल्कि उसके संरक्षण में रखी गयी अमूल्य धरोहर (न्यास) है। इसी विचार से वह कहता है कि धन देना, प्राण देना, तप करना अथवा अन्य कोई कठिन कार्य करना भी सरल हो सकता है; परन्तु किसी दूसरे की धरोहर को सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है।

अर्थ:- धन को दे देना सुखकर हो सकता है, प्राणों का त्याग करना भी सुखकर हो सकता है, तपस्या करना भी सुखकर हो सकता है और अन्य सभी कार्य भी किसी न किसी प्रकार सुखकर हो सकते हैं; किन्तु किसी दूसरे द्वारा विश्वासपूर्वक सौंपी गयी धरोहर की रक्षा करना अत्यन्त कठिन और दुःखदायी है। अर्थात् अपनी वस्तु का त्याग करना जितना कठिन नहीं, उससे कहीं अधिक कठिन किसी दूसरे की अमानत को सुरक्षित रखना है, क्योंकि उसमें व्यक्ति के अपने हित के साथ-साथ दूसरे के विश्वास और उत्तरदायित्व की रक्षा भी जुड़ी होती है।

व्याख्या:- यौगन्धरायण के मन में वासवदत्ता की सुरक्षा का प्रश्न सर्वोपरि है। वह समझता है कि धन देना, यहाँ तक कि प्राणों का त्याग करना भी एक सीमा तक सरल हो सकता है, क्योंकि इन कार्यों में मनुष्य अपने निर्णय के अनुसार कार्य करता है। तपस्या और अन्य कठिन कार्य भी मनुष्य अपनी इच्छा से स्वीकार कर सकता है। किन्तु किसी दूसरे की धरोहर की रक्षा करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि उसमें निरन्तर सावधानी, उत्तरदायित्व और विश्वास की रक्षा करनी पड़ती है। यहाँ "न्यास" शब्द अत्यन्त मार्मिक है। वासवदत्ता यौगन्धरायण के लिए केवल उसकी "भगिनी" नहीं, बल्कि उसके द्वारा सुरक्षित रखी जाने वाली अमूल्य धरोहर है। यदि उसकी रक्षा में तनिक भी त्रुटि हुई, तो उसके स्वामी उदयन के विश्वास को आघात पहुँचेगा और सम्पूर्ण राजनीतिक योजना विफल हो सकती है। इसलिए यौगन्धरायण पद्मावती के संरक्षण में वासवदत्ता को सौंपने से पहले अत्यन्त सावधानी से उसके चरित्र और धर्मशीलता का परीक्षण कर रहा है। इस प्रकार यह पद्य उसके कर्तव्यबोध, उत्तरदायित्व और स्वामिभक्ति की गहराई को प्रकट करता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

सूक्तिपरकता — यह पद्य न्यास-रक्षण की कठिनता के विषय में एक गम्भीर जीवन-सत्य प्रस्तुत करता है।

विरोधाभास — धन देना अथवा प्राण देना भी "सुख" कहा गया है, जबकि किसी दूसरे की धरोहर की रक्षा को "दुःख" कहा गया है; इससे उत्तरदायित्व की गंभीरता उभरती है।

क्रमबद्धता — अर्थ ⟶ प्राण ⟶ तप ⟶ अन्य कार्य ⟶ न्यास-रक्षण के क्रम से कथन में प्रभाव उत्पन्न हुआ है।

चरित्र-चित्रण — यौगन्धरायण की स्वामिभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा और उत्तरदायित्व-बोध स्पष्ट होता है।

नाट्यगत महत्त्व- "न्यास" की धारणा आगे वासवदत्ता को पद्मावती के संरक्षण में रखने की योजना से सीधे जुड़ती है।

भाषा-सौन्दर्य — अत्यन्त सरल शब्दों में गहन नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक सत्य व्यक्त हुआ है।

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥११॥

सन्दर्भ-प्रसंग:-प्रस्तुत श्लोक महाकवि भास के प्रसिद्ध नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। यौगन्धरायण ने राज्यहित की दृष्टि से ऐसी योजना बनाई है जिसके अनुसार वासवदत्ता को अपनी भगिनी के रूप में पद्मावती के संरक्षण में रखा जाए। पद्मावती शीघ्र ही उदयन की पत्नी बनने वाली है, इसलिए यौगन्धरायण को विश्वास है कि उसके संरक्षण में वासवदत्ता सुरक्षित रहेगी। इसी प्रसंग में यौगन्धरायण को पूर्व में सिद्ध पुरुषों द्वारा की गई भविष्यवाणी स्मरण होती है। उन्होंने उदयन पर आने वाली विपत्ति को पहले ही बता दिया था और साथ ही पद्मावती के उदयन की महिषी बनने की भी भविष्यवाणी की थी। उन सिद्ध वचनों पर विश्वास करके ही यौगन्धरायण अपनी योजना को सफल मानता है और कहता है— "तत्प्रत्ययात् कृतमिदम्।"

अर्थ:-जिन सिद्ध पुरुषों ने सबसे पहले उदयन पर आने वाली विपत्ति को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर बता दिया था, उन्हीं ने यह भी भविष्यवाणी की थी कि पद्मावती आगे चलकर उदयन की महिषी बनेगी। उन सिद्ध पुरुषों की भविष्यवाणी पर पूर्ण विश्वास करके ही मैंने यह योजना बनाई है। क्योंकि जो वचन सिद्ध पुरुषों द्वारा भली-भाँति परीक्षित होकर सत्य सिद्ध हो चुके हैं, उनका उल्लंघन करके स्वयं विधि की गति भी नहीं चलती। अतः पद्मावती का उदयन की महिषी बनना निश्चित है और उसके संरक्षण में रखी गई वासवदत्ता भी सुरक्षित रहेगी।

व्याख्या:-इस श्लोक में यौगन्धरायण अपनी योजना की सफलता के प्रति आश्वस्त दिखाई देता है। उसे पूर्व में सिद्ध पुरुषों द्वारा की गई भविष्यवाणी स्मरण है। उन्होंने उदयन के जीवन में आने वाली विपत्ति को पहले ही बता दिया था और वह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। उन्हीं के द्वारा यह भी कहा गया था कि पद्मावती उदयन की महिषी बनेगी। इसलिए यौगन्धरायण को विश्वास है कि पद्मावती के संरक्षण में वासवदत्ता को रखना उसकी योजना का उचित और सुरक्षित उपाय है। "तत्प्रत्ययात् कृतमिदम्" में यौगन्धरायण की दूरदर्शिता और योजनाबद्ध राजनीतिक बुद्धि प्रकट होती है। वह केवल वर्तमान परिस्थितियों को देखकर निर्णय नहीं लेता, बल्कि सिद्ध पुरुषों की भविष्यवाणी को भी अपनी योजना का आधार बनाता है। अन्त में "न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः" कहकर वह सिद्ध पुरुषों के वचनों की सत्यता में अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त करता है। इस प्रकार यह श्लोक नाटक की आगामी घटनाओं के लिए भी आधारभूमि तैयार करता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

अर्थान्तरन्यास का सुन्दर प्रयोग है—सिद्ध पुरुषों के वचन की सत्यता के सामान्य सिद्धान्त द्वारा अपनी योजना की सफलता को पुष्ट किया गया है। "**न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः**" में सिद्ध पुरुषों की वाणी की प्रामाणिकता तथा भाग्य की अनिवार्यता का भाव प्रभावशाली है। श्लोक में गम्भीर एवं नीतिपरक भाव है, जो यौगन्धरायण के व्यक्तित्व के अनुकूल है। नाटकीय दृष्टि से यह श्लोक वासवदत्ता को पद्मावती के संरक्षण में रखने की योजना को तार्किक आधार प्रदान करता है। भविष्यवाणी के माध्यम से आगे होने वाली घटनाओं का संकेत मिलने के कारण इसमें पूर्वाभास का नाटकीय सौन्दर्य भी दिखाई देता है।

विस्रब्धहरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया, वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो,निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥१२॥

सन्दर्भ-प्रसंग:-प्रस्तुत श्लोक महाकवि भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। पद्मावती के आगमन के कारण आश्रम से लोगों को हटाया जा रहा है। यौगन्धरायण वहाँ के वातावरण को देखकर आश्रम की विशेषता का अनुभव करता है। उसके सामने ऐसा तपोवन है जहाँ तपस्वियों की अहिंसा और दया के कारण वन्य प्राणी भी मनुष्यों से भयभीत नहीं होते और प्रकृति भी अत्यन्त समृद्ध दिखाई देती है। इसी आश्रम की पहचान करते हुए यौगन्धरायण उसके चारों ओर दिखाई देने वाले निर्भय हिरणों, पुष्प-फल से लदे वृक्षों, सुरक्षित पशुधन, कृषि-सम्पन्न प्रदेश और अनेक आश्रमों से उठते यज्ञधूम के आधार पर निश्चय करता है कि यह निश्चय ही तपोवन है।

अर्थ:-यहाँ हिरण पूर्णतः निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं और इस स्थान को अपना सुरक्षित आश्रय समझते हैं। सभी वृक्ष पुष्पों और फलों से भरे हुए हैं तथा तपस्वियों की दया के कारण सुरक्षित हैं। चारों ओर अधिकांशतः कपिल वर्ण की गौओं के समूह दिखाई दे रहे हैं और दिशाओं में खेतों की हरियाली दिखाई देती है। अनेक आश्रमों में होने वाले यज्ञादि कर्मों से उठता हुआ धुआँ भी दिखाई दे रहा है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि यह तपोवन ही है।

व्याख्या:-इस श्लोक में यौगन्धरायण ने तपोवन के शान्त,अहिंसामय और समृद्ध प्राकृतिक वातावरण का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ हिरण इतने निर्भय हैं कि बिना किसी आशंका के विचरण करते हैं। सामान्यतः मनुष्य से भयभीत रहने वाले वन्य पशुओं का इस प्रकार निश्चिन्त होकर घूमना यह प्रमाणित करता है कि आश्रमवासियों के हृदय में उनके प्रति करुणा और अहिंसा का भाव है। इसी कारण वृक्ष भी सुरक्षित हैं और पुष्प तथा फलों से लदी उनकी शाखाएँ आश्रम की समृद्धि को प्रकट करती हैं। आश्रम के बाहर के प्रदेश में भी उसकी तपोमय संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। गौ-समूहों की अधिकता,कृषि-सम्पन्न दिशाएँ और अनेक स्थानों से उठता हुआ यज्ञधूम इस बात के प्रमाण हैं कि यह प्रदेश तप, धर्म और कृषि-पशुपालन से समृद्ध है। इस प्रकार कवि ने केवल प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया,बल्कि अहिंसा,दया,धर्म और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध को भी अत्यन्त मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

दृश्यचित्रण की दृष्टि से श्लोक अत्यन्त प्रभावशाली है—निर्भय हिरण, पुष्प-फल से लदे वृक्ष, गौ-समूह, खेत और यज्ञधूम मिलकर तपोवन का सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। अहिंसा एवं करुणा को प्राकृतिक वातावरण के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कारण-कार्य सम्बन्ध अत्यन्त सुन्दर है—दयारक्षित होने के कारण पशु-पक्षी और वृक्ष निर्भय एवं सुरक्षित हैं। नाटकीय दृष्टि से यह श्लोक स्थान-निर्देश का कार्य करता है और दर्शकों के सामने तपोवन का वातावरण स्पष्ट रूप से उपस्थित करता है। इसमें मुख्यतः शान्त रस की अनुभूति होती है तथा प्रकृति-वर्णन के माध्यम से रमणीयता बढ़ती है।

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥१३॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। यौगन्धरायण वासवदत्ता को अपनी भगिनी के रूप में पद्मावती के संरक्षण में रखने की योजना बना चुका है। इस योजना के कारण वासवदत्ता को अपने प्रिय पति उदयन से दूर रहना पड़ रहा है। वह अपने वास्तविक परिचय को छिपाकर

अत्यन्त कठिन विरह-वेदना सह रही है। इसी प्रसंग में यौगन्धरायण चक्रवाक पक्षियों को देखकर उनके दाम्पत्य-प्रेम और अपने स्वामी उदयन तथा वासवदत्ता के प्रेम का स्मरण करता है। वह अनुभव करता है कि ऐसी परिस्थिति में, जिसमें पति अपनी पत्नी के प्रति इतना गहरा प्रेम रखता हो, पत्नी का जीवन बाहरी विपत्ति से भी सुरक्षित और धन्य हो जाता है।

अर्थ:- अब चक्रवाक पक्षी भी अपनी-अपनी चक्रवाकियों से इस प्रकार अलग नहीं हैं और न ही अन्य पक्षी अपनी-अपनी स्त्रियों से इस प्रकार वियुक्त हैं। वह स्त्री वास्तव में धन्य है, जिसे उसका पति इस प्रकार प्रेम और अपनत्व की दृष्टि से जानता तथा मानता है। पति के गहरे प्रेम के कारण वह स्त्री जलकर भस्म हो जाने पर भी वास्तव में जली हुई नहीं होती।

व्याख्या:- यौगन्धरायण चक्रवाक पक्षियों के स्वाभाविक दाम्पत्य-सम्बन्ध को देखकर वासवदत्ता की स्थिति की ओर संकेत करता है। चक्रवाक-चक्रवाकी के पारस्परिक प्रेम और साथ को देखकर उसे यह विचार आता है कि आज तो ये पक्षी भी अपनी-अपनी संगिनी से वियुक्त नहीं हैं, परन्तु वासवदत्ता को अपने प्रिय पति से दूर रहना पड़ रहा है। इस प्रकार सामान्य प्राकृतिक दृश्य के माध्यम से नायिका की विरह-वेदना अत्यन्त मार्मिक बन जाती है। अन्तिम चरण में "भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा" के द्वारा वासवदत्ता के प्रति उदयन के अनन्य प्रेम की महत्ता व्यक्त होती है। यहाँ "दग्धा" केवल अग्नि से जलने का संकेत नहीं, बल्कि उसके जीवन में उपस्थित विपत्ति और विरह की तीव्रता का भी बोध कराती है। पति के अटूट प्रेम के कारण वह बाह्य रूप से विपत्ति में पड़कर भी उसके हृदय में सुरक्षित है—अर्थात् प्रेम की स्मृति और निष्ठा उसे वास्तविक अर्थ में नष्ट नहीं होने देती।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

उपमा एवं दृष्टान्तात्मकता के माध्यम से चक्रवाक-दम्पती और मानवीय दाम्पत्य-प्रेम का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। "दग्धाऽप्यदग्धा" में विरोधाभासपूर्ण चमत्कार है—विपत्ति से दग्ध होकर भी पति के प्रेम के कारण अदग्धा। विप्रलम्भ-शृङ्गार की मार्मिक अनुभूति होती है। चक्रवाक-युगल का उल्लेख भारतीय काव्य-परम्परा में दाम्पत्य-विरह का प्रसिद्ध संकेत है। नाटकीय दृष्टि से श्लोक वासवदत्ता की विरह-वेदना तथा उदयन के अनन्य प्रेम को अधिक गहराई प्रदान करता है।

अनाहारे तुल्यः सततरुदितक्षामवदनः शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। ब्रह्मचारी यौगन्धरायण को लावाणक में घटी घटनाओं का समाचार सुना रहा है। वासवदत्ता के अग्निदाह का समाचार पाकर उदयन अत्यन्त शोकाकुल हो गया था और वियोगजनित दुःख के कारण अपने प्राण त्यागना चाहता था। अमात्यों ने बड़ी कठिनाई से उसे सम्भाला था। यौगन्धरायण पूछता है कि राजा को इस असहनीय दुःख से उबारने के लिए क्या किसी मन्त्री ने विशेष प्रयत्न किया। ब्रह्मचारी बताता है कि रुमण्वान् नामक मन्त्री राजा की निरन्तर सेवा कर रहा है। उसी के त्याग, सहानुभूति और स्वामिभक्ति का वर्णन करते हुए यह श्लोक कहा गया है।

अर्थ:- रुमण्वान् भी राजा के समान भोजन से विरत है, निरन्तर रोते रहने के कारण उसका मुख कृश हो गया है और उसने अपने शरीर की भी कोई देखभाल नहीं की है। वह राजा के समान ही दुःख को अपने शरीर और मन में धारण

किए हुए दिन-रात पूरी तत्परता से राजा की सेवा करता है। उसकी स्वामिभक्ति इतनी गहरी है कि यदि राजा अचानक अपने प्राण त्याग देता है, तो वह भी अपने जीवन-कार्य से विरत हो जाएगा।

व्याख्या:- इस श्लोक में रुमण्वान् की असाधारण स्वामिभक्ति और सहानुभूति का मार्मिक चित्रण हुआ है। उदयन वासवदत्ता के वियोग में भोजन तक नहीं कर रहा और निरन्तर विलाप कर रहा है। रुमण्वान् भी राजा के दुःख को केवल देखकर दुःखी नहीं होता, बल्कि स्वयं उसी दुःख को स्वीकार कर लेता है। वह भोजन त्याग देता है, उसका मुख निरन्तर रोने के कारण कृश हो जाता है और वह अपने शरीर की देखभाल तक नहीं करता। रुमण्वान् का कर्तव्य केवल दिन में ही नहीं, बल्कि "दिवा वा रात्रौ वा"—दिन और रात दोनों समय—राजा की सेवा करना है। उसकी स्वामिभक्ति इतनी गहरी है कि उसका अपना जीवन भी राजा के जीवन से जुड़ गया है। "नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः" में इसी तादात्म्य की चरम अभिव्यक्ति है। इस प्रकार रुमण्वान् केवल मन्त्री नहीं, बल्कि संकट में अपने स्वामी के दुःख को अपना दुःख मानने वाला आदर्श सेवक और सहचर बनकर सामने आता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

करुण रस की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। "दिवा वा रात्रौ वा" द्वारा रुमण्वान् की निरन्तर सेवा-तत्परता को प्रभावशाली बनाया गया है। राजा के दुःख और रुमण्वान् के दुःख में तादात्म्य स्थापित किया गया है। "नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः" में स्वामिभक्ति की चरम सीमा व्यक्त हुई है। नाटकीय दृष्टि से यह श्लोक रुमण्वान् के चरित्र को उद्भासित करने के साथ-साथ उदयन के अत्यन्त गहन वियोग-दुःख की तीव्रता को भी स्पष्ट करता है।

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को पद्मावती के संरक्षण में रखने की योजना बनाई है। वह समझता है कि मन्त्रियों के साथ जिस योजना पर विचार किया गया था, वह अब धीरे-धीरे सफल हो रही है। पद्मावती को वासवदत्ता के लिए विश्वासयोग्य आश्रय मानकर उसकी चिन्ता का एक बड़ा भाग समाप्त हो गया है। किन्तु अभी पूरी योजना सम्पन्न नहीं हुई है। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण भाग उदयन से सम्बन्धित है, क्योंकि आगे की सफलता राजा की स्थिति पर निर्भर करती है। इसी विचार से यौगन्धरायण कहता है कि कार्य का यह भार कुछ हल्का अवश्य हुआ है, परन्तु आगे का परिश्रम अभी शेष है।

अर्थ:-यह कार्यभार अब कुछ हल्का होकर विश्राम देने वाला हो गया है, क्योंकि इसका एक महत्त्वपूर्ण भाग पूरा हो चुका है; किन्तु इसके साथ जुड़ा हुआ परिश्रम अभी समाप्त नहीं हुआ है। वास्तव में जिस राजा पर सब कुछ निर्भर करता है, उसके अधीन ही समस्त कार्य और उसकी सफलता भी निर्भर है।

व्याख्या:- इस श्लोक में यौगन्धरायण की योजनाबद्ध कार्यशैली और दूरदर्शिता प्रकट होती है। वासवदत्ता को पद्मावती के संरक्षण में रखने की व्यवस्था हो जाने से उसके ऊपर पड़ा हुआ कार्यभार कुछ हल्का हुआ है। इसलिए उसे थोड़ी राहत अनुभव होती है। परन्तु वह अपनी सफलता को पूर्ण नहीं मानता, क्योंकि अभी योजना का शेष भाग पूरा होना आवश्यक है। "तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः" इस श्लोक का मुख्य भाव है। उदयन ही इस सम्पूर्ण राजनीतिक योजना का केन्द्र है। जब तक राजा सुरक्षित और सक्षम नहीं होगा, तब तक अन्य सभी प्रयत्नों की सफलता

अधूरी रहेगी। इस प्रकार यौगन्धरायण की दृष्टि केवल तत्कालीन समस्या पर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण योजना की अन्तिम सफलता पर है। यही उसकी मन्त्रित्व-कुशलता और असाधारण दूरदर्शिता को प्रकट करता है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

"भारः" और "श्रमः" के माध्यम से उत्तरदायित्व और उसके निर्वाह में होने वाले परिश्रम का सुन्दर सम्बन्ध स्थापित किया गया है। "यत्राधीनो नराधिपः" में सम्पूर्ण योजना के केन्द्र के रूप में राजा उदयन की महत्ता व्यक्त होती है। श्लोक में नीतिपरक एवं व्यावहारिक सूक्ति का सौन्दर्य है। नाटकीय दृष्टि से यह श्लोक यौगन्धरायण की योजना के एक चरण की सफलता और अगले चरण की चिन्ता—दोनों को एक साथ स्पष्ट करता है। इससे यौगन्धरायण के चरित्र में दूरदर्शिता, उत्तरदायित्व-बोध और राजनीतिक कुशलता उभरकर आती है।

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिजनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथमाङ्क से उद्धृत है। यौगन्धरायण तपोवन में उपस्थित है और वहाँ के वातावरण को ध्यानपूर्वक देख रहा है। दिन का समय समाप्त हो रहा है और संध्या धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखा रही है। इसी समय उसे आश्रम का सन्ध्याकालीन दृश्य दिखाई देता है—पक्षी अपने घोंसलों की ओर लौट रहे हैं, मुनिजन जल में स्नान कर रहे हैं, आश्रमों में अग्नि प्रज्वलित हो उठी है, यज्ञ का धुआँ फैल रहा है और सूर्य अपनी किरणों को समेटकर धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर जा रहा है। इस सम्पूर्ण दृश्य का वर्णन करते हुए यह श्लोक कहा गया है।

अर्थ:-पक्षी अपने-अपने घोंसलों में लौट गए हैं, मुनिजन जल में स्नान कर रहे हैं, आश्रमों में अग्नि प्रज्वलित होकर प्रकाशित हो रही है और यज्ञ से उत्पन्न धुआँ मुनियों के बीच चारों ओर फैल रहा है। सूर्य भी दूर हटता हुआ अपनी किरणों को समेट चुका है और अपने रथ को मोड़कर धीरे-धीरे अस्ताचल के शिखर में प्रवेश कर रहा है। इस प्रकार सम्पूर्ण तपोवन संध्याकाल की शान्त एवं पवित्र छटा से भर गया है।

व्याख्या:- इस श्लोक में कवि ने तपोवन के सन्ध्याकालीन वातावरण का अत्यन्त सजीव और रमणीय चित्रण किया है। दिनभर विचरण करने वाले पक्षी अपने घोंसलों में लौट रहे हैं। मुनिजन संध्याकालीन स्नान के लिए जल में प्रवेश कर रहे हैं। आश्रमों में धार्मिक अनुष्ठानों के लिए अग्नि प्रज्वलित हो चुकी है और उससे निकलने वाला धुआँ वातावरण में फैल रहा है। इन दृश्यों से तपोवन की धार्मिकता, शान्ति और पवित्रता स्पष्ट होती है। अन्तिम चरणों में सूर्य के अस्त होने का मानवीकरण अत्यन्त मनोहर है। सूर्य अपनी किरणों को समेटकर अपने रथ को मोड़ता हुआ मानो धीरे-धीरे अस्ताचल के शिखर में प्रवेश कर रहा है। इस प्रकार पक्षियों का लौटना, मुनियों का स्नान, अग्नि का प्रज्वलित होना, धूम का फैलना और सूर्य का अस्त होना—इन सभी दृश्यों को क्रमबद्ध करके कवि ने संध्या के क्रमशः अवतरित होने का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है।

काव्यगत एवं नाट्यगत सौन्दर्य

श्लोक में सन्ध्याकालीन प्रकृति का सजीव चित्रण हुआ है। मानवीकरण द्वारा सूर्य का रथ मोड़कर अस्ताचल में प्रवेश करना अत्यन्त रमणीय बनाया गया है। क्रमबद्ध दृश्य-विधान—पक्षियों का लौटना ⟶ मुनियों का स्नान ⟶ अग्नि

का प्रज्वलन ⟶ धूम का फैलना ⟶ सूर्य का अस्त होना—चित्र को स्वाभाविक गति प्रदान करता है। शान्त रस की प्रधानता है तथा तपोवन की पवित्रता और रमणीयता उभरकर आती है। नाटकीय दृष्टि से यह श्लोक काल-परिवर्तन और वातावरण-निर्माण में सहायक है; दिन से संध्या की ओर संक्रमण स्पष्ट होता है।

प्रश्न- स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए-

उत्तर-स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

प्रस्तावना

महाकवि भास का स्वप्नवासवदत्तम् संस्कृत नाट्य-साहित्य की उन उत्कृष्ट कृतियों में है, जिनमें राजनीति और प्रणय, कर्तव्य और भावना, त्याग और अधिकार का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। नाटक का केन्द्र राजा उदयन और वासवदत्ता का प्रेम है, किन्तु इस प्रेम की रक्षा तथा उदयन के राज्य की पुनर्प्राप्ति के लिए यौगन्धरायण जिस राजनीतिक योजना का निर्माण करता है, वही सम्पूर्ण कथानक को गति देती है। पद्मावती इस योजना में केवल राजनीतिक साधन बनकर नहीं रहती, बल्कि अपने उदात्त चरित्र के कारण स्वतंत्र रूप से भी अत्यन्त प्रभावशाली पात्र बन जाती है।

१. राजा उदयन

परिचय:- उदयन वत्सदेश का राजा और नाटक का नायक है। संस्कृत नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उसका स्वरूप धीरललित नायक का है। वह रूपवान, कलाप्रेमी, विशेषतः वीणावादन में निपुण, प्रेमशील, उदार तथा भावुक है। परन्तु उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह केवल आदर्श राजा नहीं, बल्कि प्रेम और राजधर्म के बीच संघर्ष करने वाला संवेदनशील मनुष्य है।

(१) कला-प्रेमी एवं रसिक:- उदयन की प्रसिद्धि उसके वीणावादन के कारण है। वासवदत्ता के साथ उसका प्रेम भी इसी कलात्मक वातावरण में विकसित होता है। वह सौन्दर्य और संगीत का उपासक है। यही कलाप्रियता उसके चरित्र में धीरललित नायक के लक्षणों को पुष्ट करती है।

(२) वासवदत्ता का अनन्य प्रेमी:- उदयन के चरित्र का सबसे उज्ज्वल पक्ष उसका वासवदत्ता के प्रति गहरा प्रेम है। वासवदत्ता के मृत होने का समाचार पाकर उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। दूसरी ओर, पद्मावती से विवाह हो जाने के बाद भी वह वासवदत्ता को हृदय से विस्मृत नहीं कर पाता। उसकी मनोदशा को प्रथम अंक में व्यक्त यह प्रसिद्ध पद्य अत्यन्त मार्मिक बनाता है—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता, भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा॥

यहाँ वासवदत्ता के प्रति उदयन के प्रेम की वह गहराई व्यक्त होती है जिसमें उसकी प्रेयसी बाह्यतः भले ही अग्नि में दग्ध मानी जाती हो, किन्तु उसके प्रेम में अभी भी जीवित है। इसी कारण पद्मावती से विवाह के पश्चात् भी उसके हृदय पर वासवदत्ता की स्मृति का अधिकार बना रहता है।

(३) पत्नीव्रत एवं प्रेमनिष्ठ:- पद्मावती रूप, शील और माधुर्य से सम्पन्न है, फिर भी उदयन का मन उसे वासवदत्ता के समान पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पाता। यह बात उसके चरित्र को साधारण विलासी राजा से ऊपर उठाकर एकनिष्ठ प्रेमी के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

नाटक में उसका स्वप्न-दृश्य इस प्रेम की चरम अभिव्यक्ति है। निद्रा में भी वह वासवदत्ता को पुकारता है और उसके स्पर्श की अनुभूति से विचलित हो उठता है। जागने पर उसे विश्वास नहीं होता कि वह स्वप्न था या वास्तविक दर्शन।

(४) राजधर्म से विमुख होने की दुर्बलता:- उदयन पूर्णतः दोषरहित आदर्श नायक नहीं है। वासवदत्ता के प्रेम में इतना आसक्त हो जाता है कि राजकीय दायित्वों की उपेक्षा करता है। फलतः उसका राज्य शत्रु आरुणि के अधिकार में चला जाता है। यही उसकी सबसे बड़ी मानवीय दुर्बलता है। अर्थात् भास ने उदयन को देवतुल्य नहीं बनाया; उसके चरित्र में प्रेम की शक्ति और आसक्ति की दुर्बलता—दोनों विद्यमान हैं।

(५) उदार एवं दाक्षिण्यशील:- पद्मावती से विवाह करने के बाद भी वह उसके प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करता। वह उसके गुणों का सम्मान करता है और उसके प्रति शिष्ट एवं मर्यादित रहता है। उसकी दाक्षिण्यता उसके चरित्र को सौम्यता प्रदान करती है।

(६) भावुक एवं कोमलहृदय:- वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार उसके लिए केवल राजनीतिक या पारिवारिक घटना नहीं, बल्कि जीवन-विनाशकारी आघात है। उसकी व्यथा में करुण रस और विप्रलम्भ-शृङ्गार का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

(७) नायक के रूप में महत्त्व:- उदयन के बिना नाटक का प्रेम, राजनीति और पुनर्मिलन—तीनों सम्भव नहीं। उसके व्यक्तित्व में राजा, प्रेमी, पति, कलाकार और दुर्बल मनुष्य—इन सभी रूपों का समन्वय है। अतः उदयन का चरित्र भास की दृष्टि में आदर्श और मानवीय दोनों है। वह प्रेम में अत्यन्त गम्भीर है, किन्तु प्रेमासक्ति के कारण कर्तव्य से विचलित भी होता है। अन्ततः उसकी कथा प्रेम की विजय के साथ-साथ राजधर्म की पुनर्स्थापना की कथा बन जाती है।

२. वासवदत्ता

परिचय:- वासवदत्ता अवन्तिराज प्रद्योत की पुत्री तथा उदयन की महारानी है। वह नाटक की प्रधान नायिका है। उसका चरित्र स्वप्नवासवदत्तम् की आत्मा कहा जा सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण राजनीतिक योजना अन्ततः उसी के त्याग और धैर्य पर आधारित है।

(१) पतिपरायणा एवं अनन्य प्रेममयी: -वासवदत्ता के जीवन का केन्द्र उदयन है। वह अपने व्यक्तिगत वैवाहिक अधिकार से भी अधिक महत्त्व पति के हित को देती है। यही उसके चरित्र की सर्वोच्च विशेषता है। जब यौगन्धरायण उदयन के राज्य की पुनर्प्राप्ति के लिए पद्मावती से उदयन का विवाह कराने की योजना प्रस्तुत करता है, तब वासवदत्ता के सामने अत्यन्त कठिन परिस्थिति आती है। उसे अपने पति को दूसरी स्त्री के साथ विवाह करते देखने की सम्भावना स्वीकार करनी पड़ती है। फिर भी वह राज्यहित और पतिहित के लिए अपने व्यक्तिगत सुख का त्याग करती है।

(२) अद्वितीय त्यागमूर्ति:- राजमहिषी होते हुए भी वासवदत्ता 'अवन्तिका' नाम से एक साधारण स्त्री का वेश धारण करती है और पद्मावती के संरक्षण में रहती है। यह उसके त्याग की चरम सीमा है। वह अपने पति के समीप रहते हुए भी पत्नी होने का अधिकार प्रकट नहीं करती। इससे उसका त्याग केवल बाह्य वेश-परिवर्तन नहीं, बल्कि अधिकार-त्याग बन जाता है।

(३) स्वाभिमानिनी:- वासवदत्ता अत्यन्त स्वाभिमानी है। वह अपने पति को दूसरी स्त्री से विवाह करते हुए देखने की पीड़ा सहती है, परन्तु अपनी गरिमा नहीं छोड़ती। पद्मावती के विवाह के समय उसके अन्तर्मन में स्वाभाविक

ईर्ष्या उत्पन्न होती है,किन्तु वह उसे पति के हित के आगे दबा देती है। यही संयम उसके चरित्र को अत्यन्त ऊँचा बनाता है।

(४) गुणग्राहिणी:- वासवदत्ता पद्मावती की प्रतिद्वन्द्वी होते हुए भी उसके गुणों को पहचानती है। वह उसके रूप और कुलीनता की प्रशंसा करती है। यह उसकी उदारता और गुणग्राहकता का परिचायक है।इस दृष्टि से वह केवल ईर्ष्यालु पत्नी नहीं, बल्कि ऐसी उदात्त नारी है जो अपने व्यक्तिगत दुःख के बीच भी दूसरे के गुणों को स्वीकार कर सकती है।

(५) कोमलहृदया:- वासवदत्ता का हृदय अत्यन्त संवेदनशील है। पति के समीप आकर भी उसे अपने अस्तित्व को छिपाना पड़ता है। जब उदयन स्वप्नावस्था में वासवदत्ता को पुकारता है और वह उसके समीप पहुँचती है, तब उसके भीतर का पत्नी-हृदय जाग उठता है; किन्तु पति के हित को स्मरण कर वह पुनः स्वयं को रोक लेती है। यही प्रसंग उसके आत्मसंयम और प्रेम की पराकाष्ठा को प्रकट करता है।

(६) धैर्य एवं आत्मसंयम:- वासवदत्ता के चरित्र में भावुकता है, परन्तु वह भावुक होकर निर्णय नहीं करती। यौगन्धरायण की योजना को स्वीकार करना, वेश बदलना, पद्मावती के यहाँ रहना और पति के पुनर्विवाह की पीड़ा सहना—इन सभी के लिए असाधारण धैर्य चाहिए।

(७) नाटक की आत्मा:- यदि उदयन नाटक का नायक है तो वासवदत्ता उसकी भावनात्मक आत्मा है। उसके त्याग के बिना यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना सफल नहीं हो सकती थी। इसलिए वासवदत्ता का चरित्र प्रेम और त्याग के अद्वितीय समन्वय का प्रतीक है।

निष्कर्षतः, वासवदत्ता का प्रेम अधिकार माँगने वाला प्रेम नहीं, बल्कि प्रिय के हित में स्वयं को विसर्जित कर देने वाला प्रेम है। इसी कारण वह संस्कृत नाट्य-साहित्य की अत्यन्त उदात्त नायिकाओं में स्थान प्राप्त करती है।

३. पद्मावती

परिचय:- पद्मावती मगधराज की बहन है और आगे चलकर उदयन की पत्नी बनती है। वह वासवदत्ता की प्रतिद्वन्द्वी होते हुए भी उसके प्रति शत्रुता नहीं रखती। भास ने उसके चरित्र को इतना उदात्त बनाया है कि वह केवल 'दूसरी पत्नी' न रहकर स्वतंत्र रूप से एक आदर्श नारी का रूप ग्रहण कर लेती है।

(१) धर्मप्रिया:- प्रथम अंक में ही पद्मावती के चरित्र की आधारभूमि निर्मित हो जाती है। वह तपोवन में आती है और तपस्वियों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करती है। उसके आदेश से तपस्वियों को आश्रम में निर्बाध रूप से विचरण करने तथा अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ लेने की अनुमति दी जाती है। इसी प्रसंग में उसका धर्मनिष्ठ स्वभाव व्यक्त होता है—

धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा।
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥

अर्थात् राजकुमारी पद्मावती धर्मप्रिया है; वह तपस्वियों के धार्मिक कार्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं चाहती। इससे उसके संस्कार और कुलीनता का परिचय मिलता है।

(२) उदारहृदया:-पद्मावती केवल राजकुल में जन्म लेने के कारण महान नहीं है; उसका वास्तविक महत्त्व उसके व्यवहार में है। जब यौगन्धरायण वासवदत्ता को 'न्यास' के रूप में उसके पास रखने की व्यवस्था करता है, तब वह

उसके साथ अत्यन्त स्नेह और सम्मान से व्यवहार करती है। यहाँ पद्मावती की उदारता विशेष रूप से उभरती है—वह उस स्त्री को आश्रय देती है जिसे वह अपनी भावी वैवाहिक परिस्थिति से सम्बन्धित भी नहीं समझती।

***(३) मधुरभाषिणी एवं विनयी**:-विदूषक द्वारा उसके गुणों का वर्णन करते हुए उसे तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहंकारा, मधुरवाक् और सदाक्षिण्या आदि गुणों से सम्पन्न बताया गया है। इससे उसका सौम्य और आकर्षक व्यक्तित्व स्पष्ट होता है।*

***(४) विशालहृदया**:-पद्मावती के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विशालहृदयता है। वह उदयन के जीवन में वासवदत्ता के पूर्ववर्ती स्थान को जानने के बाद भी उसके प्रति घृणा नहीं करती। विशेष रूप से जब उसे वासवदत्ता के जीवित होने का संकेत मिलता है, तब उसमें ईर्ष्या के स्थान पर प्रसन्नता और सहानुभूति का उदय होता है। इस प्रकार वह सामान्य 'सौत' की रूढ़ छवि को तोड़ देती है।*

***(५) पतिपरायणा**:- उदयन से विवाह के पश्चात् वह उसे पूर्ण निष्ठा से पति मानती है। वह उसके मन में वासवदत्ता के प्रति विद्यमान प्रेम को समझती है और उसके लिए वासवदत्ता के गुणों का स्मरण किए जाने को भी अनुचित नहीं मानती। यह उसका अत्यन्त उदात्त वैवाहिक दृष्टिकोण है।*

***(६) वासवदत्ता के प्रति स्नेह**:- पद्मावती और वासवदत्ता का सम्बन्ध इस नाटक की सबसे सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों में है। पद्मावती को ज्ञात ही नहीं कि 'अवन्तिका' वास्तव में उसकी सौत वासवदत्ता है। फिर भी वह उसके प्रति स्नेह रखती है। बाद में सत्य उद्घाटित होने पर यह स्नेह और भी मार्मिक बन जाता है।*

***(७) राजनीतिक दृष्टि से महत्त्व**:- पद्मावती के साथ उदयन का विवाह यौगन्धरायण की राजनीतिक योजना का आवश्यक अंग है। मगध के साथ सम्बन्ध स्थापित होने से उदयन को आरुणि के विरुद्ध शक्ति मिलती है और अन्ततः उसका राज्य पुनः प्राप्त होता है। अतः पद्मावती व्यक्तिगत चरित्र के साथ-साथ राजनीतिक सेतु की भूमिका भी निभाती है। अतः, पद्मावती का चरित्र धर्म, दाक्षिण्य, उदारता, पतिनिष्ठा और विशालहृदयता का समन्वय है। वह वासवदत्ता की प्रतिद्वन्द्वी होकर भी उसकी सहचरी बन जाती है—यही भास की चरित्र-सृष्टि की विलक्षणता है।*

४. यौगन्धरायण

***परिचय**:- यौगन्धरायण उदयन का प्रधान मन्त्री और नाटक का राजनीतिक सूत्रधार है। यदि उदयन नाटक का नायक है, तो यौगन्धरायण उसके भाग्य का कुशल नियन्ता है। सम्पूर्ण राजनीतिक योजना—वासवदत्ता को मृत घोषित करना, उसे अवन्तिका के रूप में पद्मावती के पास रखना, उदयन का पुनर्विवाह कराना और मगध की सहायता से राज्य पुनः प्राप्त करना—उसकी बुद्धि और दूरदर्शिता का परिणाम है।*

***(१) अद्वितीय स्वामिभक्त**:-यौगन्धरायण के चरित्र का मूलाधार स्वामिभक्ति है। वह अपने सुख, यश और प्रतिष्ठा की चिन्ता नहीं करता; उसका एकमात्र लक्ष्य उदयन का हित और उसके राज्य की पुनर्प्राप्ति है। उसकी योजना में उसे स्वयं भी अपने प्राणों को संकट में डालना पड़ता है। वह वासवदत्ता के साथ अग्निकाण्ड में मारे जाने का झूठा समाचार स्वीकार करता है। इस प्रकार उसकी स्वामिभक्ति केवल शब्दों में नहीं, व्यावहारिक आत्मत्याग में व्यक्त होती है।*

***(२) दूरदर्शी राजनीतिज्ञ**:- यौगन्धरायण तत्कालीन परिस्थिति को ही नहीं देखता, बल्कि भविष्य की सम्भावनाओं को भी समझता है। उसे ज्ञात है कि केवल सैन्य-बल से उदयन राज्य पुनः प्राप्त नहीं कर सकता। अतः वह*

मगध के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की योजना बनाता है। उसकी राजनीतिक बुद्धि का चरम रूप यह है कि वह एक साथ कई उद्देश्यों की पूर्ति करता है— वासवदत्ता की रक्षा ⟶ पद्मावती से विवाह ⟶ मगध से मैत्री ⟶ सैन्य-सहयोग ⟶ आरुणि की पराजय ⟶ वत्सराज्य की पुनर्प्राप्ति। यही कारण है कि वह नाटक का सबसे प्रभावशाली राजनीतिक पात्र बन जाता है।

(३) प्रत्युत्पन्नमति:- यौगन्धरायण परिस्थिति के अनुसार तत्काल निर्णय लेने में समर्थ है। तपोवन में पद्मावती की घोषणा सुनकर वह उसी अवसर का उपयोग वासवदत्ता को उसके संरक्षण में रखने के लिए करता है। उसका यह संवाद—"अहमर्थी।" और उसके बाद वासवदत्ता को 'भगिनी' के रूप में पद्मावती के संरक्षण में रखने की योजना—उसकी असाधारण अवसर-बोधक बुद्धि का परिचायक है।

(४) मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ:- यौगन्धरायण केवल राजनीतिक गणना नहीं करता; वह मनुष्य के मन को भी समझता है। वह जानता है कि उदयन वासवदत्ता को जीवित रहते हुए किसी दूसरी स्त्री से विवाह के लिए सहज रूप से तैयार नहीं होगा। इसलिए पहले वासवदत्ता को मृत मानने की परिस्थिति निर्मित की जाती है। इसी प्रकार वह पद्मावती की धर्मप्रियता और उदारता को पहचानकर उसी के संरक्षण में वासवदत्ता को रखता है।

(५) त्यागशील एवं आत्मनिरपेक्ष:- यौगन्धरायण अपनी सफलता का श्रेय स्वयं नहीं लेता। प्रथम अंक में उसका यह दृष्टिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि कार्य की सफलता को वह अपने कौशल के प्रदर्शन के रूप में नहीं, बल्कि स्वामी के भाग्य के रूप में देखता है। यही उसकी निरभिमानिता है।

(६) धर्मनिष्ठ एवं कर्तव्यपरायण:- उसकी योजनाएँ छलपूर्ण अवश्य हैं, किन्तु उनका उद्देश्य निजी स्वार्थ नहीं है। वह राजनीतिक छल को राजधर्म और स्वामिधर्म की पूर्ति के साधन के रूप में अपनाता है। इसलिए उसके चरित्र में नीति और कूटनीति का विशिष्ट समन्वय दिखाई देता है।

(७) योजनाकार एवं नाटक का अप्रत्यक्ष नायक:- यौगन्धरायण मंच पर उदयन जितना उपस्थित नहीं रहता, फिर भी कथानक की अधिकांश निर्णायक घटनाओं के पीछे उसी की योजना काम करती है। इस दृष्टि से वह नाटक का अप्रत्यक्ष नियन्ता है। यदि यौगन्धरायण की योजना न होती तो—"वासवदत्ता की रक्षा नहीं हो सकती थी, पद्मावती से विवाह सम्भव नहीं होता,मगध का सहयोग नहीं मिलता,आरुणि पर विजय कठिन होती और उदयन का राज्य पुनः प्राप्त नहीं होता। अतः उसका चरित्र नाटक की राजनीतिक धुरी है"।

समग्र मूल्यांकन

स्वप्नवासवदत्तम् के इन चारों पात्रों में भास ने चार भिन्न मानवीय शक्तियों को मूर्त किया है—उदयन में प्रेम, वासवदत्ता में त्याग, पद्मावती में उदारता और यौगन्धरायण में बुद्धि एवं कर्तव्य। इन चारों के परस्पर सम्बन्ध से ही नाटक का भावात्मक और राजनीतिक ताना-बाना निर्मित होता है। विशेष बात यह है कि भास ने किसी पात्र को एकरेखीय नहीं बनाया। उदयन प्रेमी होने के साथ राजधर्म से विचलित होने वाला मनुष्य भी है; वासवदत्ता प्रेमिका होने के साथ अपने अधिकार का त्याग करने वाली तपस्विनी-सी नारी है; पद्मावती 'दूसरी पत्नी' होते हुए भी ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वी नहीं, बल्कि उदारहृदया नारी है; और यौगन्धरायण राजनीतिज्ञ होते हुए भी निष्ठुर कूटनीतिज्ञ नहीं, बल्कि स्वामी के हित में स्वयं को विसर्जित करने वाला सेवक है। इसी बहुआयामी चरित्र-चित्रण के कारण स्वप्नवासवदत्तम् का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

अत्यन्त गहरा है। नाटक में मुख्य संघर्ष बाह्य युद्ध से अधिक मानव-हृदय के भीतर चलने वाला संघर्ष है—प्रेम बनाम कर्तव्य, अधिकार बनाम त्याग और भावना बनाम राजनीति।

5.अजन्त पुल्लिङ्ग प्रकरण: सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि

{अजन्त पु. -राम, हरि, साधु}

१. राम-शब्दरूप-सिद्धि

प्रातिपदिक — राम

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

प्रमुख रूपसिद्धियाँ

रामः= राम + सु ⟶ रामस् ⟶ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।१०२) ⟶ रामास् ⟶ ससजुषो रुः (८।२।६६) ⟶ रामार् ⟶ खरवसानयोर्विसर्जनीयः (८।३।१५) ⟶ रामः।

रामौ= राम + औ ⟶ पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त होने पर नादिचि (६।१।१०४) से उसका निषेध ⟶ वृद्धिरेचि (६।१।८८) ⟶ रामौ।

रामाः= राम + जस् ⟶ ज् का इत्संज्ञक होकर लोप ⟶ रामस् ⟶ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ⟶ रामास् ⟶ रुत्व-विसर्ग ⟶ रामाः।

रामम्= राम + अम् ⟶ अमि पूर्वः (६।१।१०७) ⟶ रामम्।

रामान्= राम + शस् ⟶ श् का लोप ⟶ रामस् ⟶ पूर्वसवर्णदीर्घ ⟶ रामास् ⟶ तस्माच्छसो नः पुंसि (६।१।१०३) ⟶ रामान्।

रामेण= राम + टा ⟶ अतो भिस ऐस् आदि से सम्बन्धित प्रक्रिया के स्थान पर यहाँ टाङसिङसामिनात्स्याः (७।१।१२) से टा ⟶ इन; आगे णत्वादि से ⟶ रामेण।

रामाय= राम + ङे ⟶ ङेर्यः (७।१।१३) ⟶ रामय ⟶ सुपि च (७।३।१०२) से दीर्घ ⟶ रामाय।

रामैः= राम + भिस् ⟶ अतो भिस ऐस् (७।१।९) ⟶ रामैस् ⟶ रुत्व-विसर्ग ⟶ रामैः।

रामस्य= राम + ङस् ⟶ टाङसिङसामिनात्स्याः (७।१।१२) ⟶ रामस्य।

रामयोः= राम + ओस् ⟶ ओसि च (७।३।१०४) से ए तथा अयादेश ⟶ रामयोः।

रामाणाम्= राम + आम् ⟶ ह्रस्वनद्यापो नुट् (७।१।५४) से नुट् ⟶ रामनाम् ⟶ नामी (६।४।३) से दीर्घ तथा णत्व ⟶ रामाणाम्।

रामे= राम + ङि ⟶ ङ् का लोप ⟶ रामइ ⟶ आद्गुणः (६।१।८७) ⟶ रामे।

रामेषु= राम + सुप् ⟶ प् का लोप ⟶ रामसु ⟶ बहुवचने झल्येत् (७।३।१०३) ⟶ रामेसु ⟶ आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९) से स् ⟶ ष् ⟶ रामेषु।

२. हरि-शब्दरूप-सिद्धि

प्रातिपदिक — हरि

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

प्रमुख रूपसिद्धियाँ

हरिः= हरि + सु ⟶ हरिस् ⟶ रुत्व-विसर्ग ⟶ हरिः।

हरी= हरि + औ ⟶ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।१०२) ⟶ हरी।

हरयः= हरि + जस् ⟶ ज् का लोप ⟶ हरिअस् ⟶ जसि च (७।३।१०९) से इकार का गुण ⟶ हरेस् ⟶ एचोऽयवायावः (६।१।७८) से अयादेश ⟶ हरयस ⟶ रुत्व-विसर्ग ⟶ हरयः।

हरिम्= हरि + अम् ⟶ अमि पूर्वः (६।१।१०७) ⟶ हरिम्।

हरीन्= हरि + शस् ⟶ शकार का लोप ⟶ हरिअस् ⟶ पूर्वसवर्णदीर्घ ⟶ हरीस् ⟶ तस्माच्छसो नः पुंसि (६।१।१०३) ⟶ हरीन्।

हरिणा= हरि + टा ⟶ शेषो घ्यसखि (१।४।७) से हरि की घि-संज्ञा ⟶ आङो नाऽस्त्रियाम् (७।३।१२०) से टा ⟶ ना ⟶ अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (८।४।२) से णत्व ⟶ हरिणा।

हरेः= हरि + ङस् ⟶ इकारान्त घि-अङ्ग पर प्रक्रिया ⟶ ङसिङसोश्च (६।१।११०) ⟶ हरेः।

हर्योः= हरि + ओस् ⟶ गुण होकर एकार तथा एचोऽयवायावः से अयादेश ⟶ हर्योः।

हरीणाम्= हरि + आम् ⟶ नुट् तथा दीर्घादि प्रक्रिया ⟶ णत्व ⟶ हरीणाम्।

हरौ= हरि + ङि ⟶ घि-संज्ञा ⟶ अच्च घेः (७।३।११९) से इकार का अकार तथा ङि का औ ⟶ हरौ।

हरिषु= हरि + सुप् ⟶ इकारान्त अङ्ग के कारण सम्बन्धित प्रक्रिया ⟶ हरिषु।

३. साधु-शब्दरूप-सिद्धि

प्रातिपदिक — साधु

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	साधुः	साधू	साधवः
द्वितीया	साधुम्	साधू	साधून्
तृतीया	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभिः
चतुर्थी	साधवे	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
पञ्चमी	साधोः	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
षष्ठी	साधोः	साध्वोः	साधूनाम्
सप्तमी	साधौ	साध्वोः	साधुषु
सम्बोधन	हे साधो	हे साधू	हे साधवः

प्रमुख रूपसिद्धियाँ

साधुः= साधु + सु ⟶ साधुस् ⟶ रुत्व-विसर्ग ⟶ साधुः।

साधु= साधु + औ ⟶ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।१०२) ⟶ साधू।

साधवः= साधु + जस् ⟶ ज् का लोप ⟶ साधुअस् ⟶ जसि च (७।३।१०९) से उकार का गुण ⟶ साधोस् ⟶ एचोऽयवायावः से अवादेश ⟶ साधवस् ⟶ रुत्व-विसर्ग ⟶ साधवः।

साधुम्= साधु + अम् ⟶ अमि पूर्वः (६।१।१०७) ⟶ साधुम्।

साधून्= साधु + शस् ⟶ श् का लोप ⟶ साधुअस् ⟶ पूर्वसवर्णदीर्घ ⟶ साधूस् ⟶ तस्माच्छसो नः पुंसि ⟶ साधून्।

साधुना= साधु + टा ⟶ शेषो घ्यसखि से घि-संज्ञा ⟶ आङो नाऽस्त्रियाम् से ना ⟶ साधुना।

साधवे= साधु + ङे ⟶ गुण ⟶ साधो + य/ए-सम्बन्धी प्रक्रिया ⟶ साधवे।

साधोः= साधु + ङस् ⟶ गुण ⟶ साधोस् ⟶ रुत्व-विसर्ग ⟶ साधोः।

साध्वोः= साधु + ओस् ⟶ एचोऽयवायावः से उकारान्त अङ्ग में वकारादेश ⟶ साध्वोः।

साधूनाम्= साधु + आम् ⟶ नुट्/दीर्घादि प्रक्रिया ⟶ साधूनाम्।

साधौ= साधु + ङि ⟶ अच्च घेः आदि से ⟶ साधौ।

साधुषु= साधु + सुप् ⟶ उकारान्त अङ्ग से सम्बन्धित प्रक्रिया ⟶ साधुषु।

संक्षिप्त-निष्कर्ष

राम अकारान्त, हरि इकारान्त तथा साधु उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रातिपदिक हैं। तीनों में सामान्यतः सुप्-प्रत्ययों का विधान समान है, किन्तु अन्तिम स्वर के भेद से रूपसिद्धि में विशेष सूत्रों का प्रयोग अलग-अलग होता है। विशेषतः राम में अकारान्त-सम्बन्धी नियम, हरि में घि-संज्ञा तथा इकार के गुणादि नियम, और साधु में उकार के गुण तथा वकारादेशादि नियम रूपसिद्धि के प्रमुख आधार हैं।

6.अजन्तस्त्रीलिङ्ग तथा अजन्तनपुंसकलिङ्ग- प्रकरण

{सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि}

1.अजन्त स्त्रीलिङ्ग — रमा, मति

2.अजन्त नपुंसकलिङ्ग — ज्ञान, वारि

१. स्त्रीलिङ्ग — रमा

रमा आकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक है। आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की रूपसिद्धि में विशेषतः औङ् आपः (७।१।१८), याङ् आपः (७।३।१०५), सम्बुद्धौ च (७।३।१०६) आदि सूत्र महत्त्वपूर्ण हैं। औङ् आपः में 'औङ्' से औ और औट् तथा 'शी' का आदेश ग्रहण किया जाता है।

(क) प्रथमा एकवचन — रमा = रमा + सु ⟶ रमा + अम् — औङ् आपः ७।१।१८ के अधिकार से आकारान्त स्त्रीलिङ्ग में सु/औट् सम्बन्धी प्रक्रिया ⟶ रमा, अतः रमा।

(ख) प्रथमा द्विवचन — रमे= रमा + औ ⟶ रमा + शी — औङ् आपः ७।१।१८

⟶ रमा + ई — शकार इत् होकर लुप्त ⟶ रमे — आद्गुणः ६।१।८७अर्थात् आ + ई के स्थान पर ए।

(ग) प्रथमा बहुवचन — रमाः= रमा + जस् ⟶ रमा + स् — चुटू १।३।७ से जकार इत् और लोप ⟶ रमा + अस् — प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२ ⟶ रमार् — ससजुषो रुः ८।२।६६ ⟶ रमाः — खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५

(घ) चतुर्थी एकवचन — रमायै= रमा + ङे ⟶ रमा + याट् — याङ् आपः ७।३।१०५ ⟶ रमायै
यहाँ याट् आगम आकारान्त स्त्रीलिङ्ग के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(ङ) सप्तमी एकवचन — रमायाम्=रमा + ङि ⟶ रमा + याट् + ङि — याङ् आपः ७।३।१०५ ⟶ रमायाम्

(च) सम्बोधन एकवचन — हे रमे= रमा + सु ⟶ रमे — सम्बुद्धौ च ७।३।१०६

इस सूत्र से सम्बोधन में आकारान्त स्त्रीलिङ्ग का आकार एकार हो जाता है।

रमा-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	रमे	रमाः
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पञ्चमी	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	रमयोः	रमासु
सम्बोधन	हे रमे	हे रमे	हे रमाः

२. स्त्रीलिङ्ग — मति

मति इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द है। इसकी रूपसिद्धि आकारान्त रमा से भिन्न है। यहाँ इकारान्त स्त्रीलिङ्ग की नदी-संज्ञा तथा नदी-संज्ञक शब्दों पर होने वाली प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

(क) प्रथमा एकवचन — मतिः = मति + सु ⟶ मति + स् ⟶ मतिः, अतः प्रथमा एकवचन मतिः।

(ख) प्रथमा द्विवचन — मती= मति + औ ⟶ मती, अर्थात् दीर्घ ई के कारण रूप मती।

(ग) प्रथमा बहुवचन — मतयः=मति + जस् ⟶ मति + अस् ⟶ मत्यस् — इको यणचि ६।१।७७ से इकार के स्थान पर यण् ⟶ मतयः — रुत्व-विसर्गादि प्रक्रियाओं से। अतः मतयः।

(घ) चतुर्थी एकवचन — मत्यै=मति + ङे ⟶ मत्यै

(ङ) सप्तमी एकवचन — मत्याम्= मति + ङि ⟶ मत्याम्, अतः यहाँ भी यणादेश के कारण मत्य- रूप बनता है।

मति-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	हे मते	हे मती	हे मतयः

३. नपुंसकलिङ्ग — ज्ञान

ज्ञान अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिक है। इसकी रूपसिद्धि में अतोऽम् (७।१।२४), अमि पूर्वः (६।१।१०७), जश्शसोः शिः (७।१।२०), शि सर्वनामस्थानम् (१।१।४२), नपुंसकस्य झलचः (७।१।७२) आदि सूत्र प्रमुख हैं। लघुसिद्धान्तकौमुदी में अतोऽम् के उदाहरण के रूप में स्वयं ज्ञानम् और सम्बोधन में हे ज्ञान दिया गया है।

(क) प्रथमा एकवचन — ज्ञानम्=ज्ञान + सु ⟶ ज्ञान + अम् — अतोऽम् ७।१।२४ ⟶ ज्ञानम् — अमि पूर्वः ६।१।१०७ यहाँ अकार और अम् के संयोग से पूर्वरूप होकर ज्ञानम् सिद्ध होता है।

(ख) द्वितीया एकवचन — ज्ञानम्=नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा और द्वितीया एकवचन का रूप समान होता है। अतः— ज्ञानम्

(ग) प्रथमा/द्वितीया बहुवचन — ज्ञानानि= ज्ञान + जस् ⟶ ज्ञान + शि — जश्शसोः शिः ७।१।२०⟶ शि को सर्वनामस्थान-संज्ञा — शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२ ⟶ ज्ञान + नुम् + शि — नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२ ⟶ ज्ञानन् + इ ⟶ ज्ञानानि

(घ) सम्बोधन एकवचन — हे ज्ञान= ज्ञान + सु ⟶ ज्ञानम् ⟶ ज्ञान — सम्बोधन-प्रक्रिया में मकार का लोप। लघुसिद्धान्तकौमुदी में इसका स्पष्ट उदाहरण हे ज्ञान दिया गया है।

ज्ञान-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वितीया	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
तृतीया	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
चतुर्थी	ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
पञ्चमी	ज्ञानात्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
षष्ठी	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
सप्तमी	ज्ञाने	ज्ञानयोः	ज्ञानेषु
सम्बोधन	हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि

४. नपुंसकलिङ्ग — वारि

वारि इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द है। इसकी रूपसिद्धि ज्ञान से भिन्न है। विशेषतः स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३, नपुंसकाच्च ७।१।१९, इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३ आदि सूत्र यहाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

(क) प्रथमा एकवचन — वारि= वारि + सु ⟶ वारि — स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३ से सु का लुक्।

(ख) प्रथमा द्विवचन — वारिणी=वारि + औ ⟶ वारि + शी — नपुंसकाच्च ७।१।१९ ⟶ वारि + ई⟶ वारि + नुम् + ई — इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३⟶ वारिणी — अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२ से णत्व।

लघुसिद्धान्तकौमुदी की व्याख्या में वारि + औ ⟶ वारिणी की यही प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दी गई है।

(ग) प्रथमा बहुवचन — वारीणि= वारि + जस् ⟶ वारि + शि — जश्शसोः शिः ७।१।२० ⟶ नुमागम ⟶ वारीणि

(घ) सप्तमी बहुवचन — वारिषु=वारि + सुप् ⟶ वारिषु

यहाँ इकारान्त नपुंसक के अनुसार षत्वादि प्रक्रिया से रूप सिद्ध होता है।

वारि-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

7.हलन्त पुल्लिङ्ग प्रकरण

{सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि (पु. - इदम्, राजन्, तद्, किम्)}

१. इदम्-शब्द:- इदम् सर्वनामसंज्ञक, मकारान्त/हलन्त शब्द है। इसकी रूपसिद्धि सामान्य हलन्त शब्दों से भिन्न है; विशेषतः त्यदाद्यत्व, इदमो मः, इदोऽय् पुंसि, अनाप्यकः आदि सूत्र महत्त्वपूर्ण हैं। लघुसिद्धान्तकौमुदी में इदमो मः (७।२।१०८) तथा इदोऽय् पुंसि (७।२।१११) स्पष्ट रूप से इदम् की विशेष प्रक्रिया के अन्तर्गत दिये गये हैं।

प्रमुख सूत्र:- **(१) इदमो मः — ७।२।१०८**

वृत्ति:-इदमःसौ मः,अर्थात् इदम् शब्द के सु परे होने पर विशेष रूप से मकारादेश होता है।यह त्यदाद्यत्व का अपवाद है।

(२) इदोऽय् पुंसि — ७।२।१११

वृत्ति:इदम इदोऽय् सौ पुंसि।अर्थात् पुल्लिङ्ग में सु-विभक्ति परे होने पर इदम् के इद् के स्थान पर अय् आदेश होता है।

अतः— इदम् + सु ⟶ अयम् और यही प्रथमा एकवचन का प्रसिद्ध रूप अयम् है।

(३) द्वितीयाटौस्स्वेनः — २।४।३४

इदम्/एतद् के अन्वादेश में द्वितीया आदि विभक्तियों के प्रसङ्ग में एन आदेश होता है। उदाहरण— इदम् + अम् ⟶ एनम्,अतः द्वितीया एकवचन- एनम्। लघुसिद्धान्तकौमुदी की टीका में भी इदम् + अम् ⟶ एनम् की प्रक्रिया दी गयी है।

इदम्-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	एनम्	इमौ	इमान्

तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

ध्यान दें: इदम् का रूप केवल सामान्य हलन्त-प्रक्रिया से नहीं बनता; इसके लिए सर्वनाम-प्रकरण की विशेष प्रक्रियाएँ जानना आवश्यक है।

२. राजन्-शब्द:- राजन् नकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द है। इसकी रूपसिद्धि हलन्तपुंलिङ्ग प्रकरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। लघुसिद्धान्तकौमुदी में न ङिसम्बुद्ध्योः (८।२।८), नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति (८।२।२) आदि सूत्र इसके लिए प्रयुक्त होते हैं।

(१) न ङिसम्बुद्ध्योः — ८।२।८

वृत्ति: नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च। अर्थात् नकारान्त प्रातिपदिक के अन्त्य न् का लोप सामान्यतः होता है, किन्तु ङि तथा सम्बुद्धि के प्रसङ्ग में नकार का लोप नहीं होता।

इसीलिए— हे राजन् — यहाँ नकार बना रहता है। इसी प्रकार राज्ञि में भी नकार लोप नहीं होता।

(२) नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य — ८।२।७: नकारान्त प्रातिपदिक के अन्त्य नकार का लोप होता है। राजन् + सु ⟶ राजन् ⟶ राजा, किन्तु नलोप के बाद भी उपधा-अकार का दीर्घत्व आदि प्रक्रियाएँ होती हैं।

(३) सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ — ६।४।८: सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर, सम्बोधन को छोड़कर, नान्त अङ्ग की उपधा का दीर्घत्व होता है। अतः— राजन् + सु ⟶ राजान् ⟶ राजा, लघुसिद्धान्तकौमुदी की प्रक्रिया में इसी क्रम से राजा रूप सिद्ध होता है।

(४) राज्ञि / राजनि:- सप्तमी एकवचन में— राजन् + ङि ⟶ राज्ञि,यहाँ नकार का लोप नहीं होता और नकार + ङि के संयोग से ज्ञकारादि रूप-संरचना प्राप्त होती है।

राजन्-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि/राजनि	राज्ञोः	राजसु

सम्बोधन हे राजन् हे राजानौ हे राजानः

विशेष स्मरणीय:- राजा — राजानौ — राजानः; राजानम् — राज्ञः; राज्ञा — राजभिः; राज्ञे — राज्ञः; राज्ञि।

३. तद्-शब्द:- तद् दकारान्त सर्वनामसंज्ञक पुल्लिङ्ग शब्द है। इसकी रूपसिद्धि में त्यदादि-सम्बन्धी विशेष नियमों का प्रयोग होता है। प्रमुख प्रक्रिया:- प्रथमा एकवचन में— तद् + सु ⟶ तत्। यहाँ पदान्त दकार का चर्त्व होकर त् होता है। अतः— तद् ⟶ तत्, इसी प्रकार— द्विवचन — तौ, बहुवचन — ते

द्वितीया:- द्वितीया एकवचन में— तम्, द्विवचन— तौ, बहुवचन— तान्

तद्-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तत्	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

यहाँ तस्मै, तस्मात्, तस्य, तस्मिन् आदि रूपों में सर्वनाम-प्रत्ययों की विशिष्ट प्रक्रिया है; इन्हें सामान्य हलन्त शब्दों की तरह नहीं बनाना चाहिए।

४. किम्-शब्द:- किम् मकारान्त सर्वनामसंज्ञक शब्द है। इसकी विशेषता यह है कि प्रथमा एकवचन में किम् ⟶ कः तथा द्विवचन में कौ, बहुवचन में के रूप मिलते हैं। लघुसिद्धान्तकौमुदी में इसके लिए स्पष्ट सूत्र है—

किमः कः — ७।२।१०३

वृत्ति:- किमः कः स्याद्विभक्तौ। अर्थात् विभक्ति परे होने पर किम् के स्थान पर क आदेश होकर आगे की प्रक्रिया से कः आदि रूप सिद्ध होते हैं। लघुसिद्धान्तकौमुदी में उदाहरणतः कः, कौ, के दिये गये हैं।

किम्-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

चारों शब्दों की रूपसिद्धि का तुलनात्मक बिन्दु

शब्द	स्वरूप	मुख्य विशेषता
इदम्	मकारान्त सर्वनाम	अयम्, एनम्, अनेन आदि विशेष सर्वनाम-रूप
राजन्	नकारान्त पुल्लिङ्ग	नलोप, उपधा-दीर्घ, राज्ञा/राज्ञि आदि
तद्	दकारान्त सर्वनाम	तत्, तौ, ते; तेन, तस्मै आदि
किम्	मकारान्त सर्वनाम	किमः कः से कः, कौ, के आदि

लघुसिद्धान्तकौमुदी में हलन्तपुंलिङ्ग को पृथक् प्रकरण के रूप में रखा गया है और राजन्, इदम् तथा किम् की ये विशेष प्रक्रियाएँ उसी प्रकरण में क्रमशः दी गयी हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात: इदम्, तद् और किम् सामान्य हलन्त पुल्लिङ्ग शब्द नहीं हैं; ये सर्वनाम-शब्द हैं। अतः इनके रूपों में सामान्य सुप्-प्रत्यय-प्रक्रिया के साथ सर्वनामसंज्ञक विशेष सूत्र भी अनिवार्य रूप से लगाने पड़ते हैं। यही इनकी रूपसिद्धि का बौद्धिक पक्ष है।

8.हलन्त-प्रकरण: सूत्र व्याख्या एवं शब्द रूप सिद्धि

1.स्त्रीलिङ्ग — किम्, इदम्

2.नपुंसकलिङ्ग — इदम्, अहन्

१. स्त्रीलिङ्ग — किम्

किम् स्त्रीलिङ्ग में प्रश्नवाचक सर्वनाम का रूप है। इसका प्रथमा एकवचन का, द्विवचन के, बहुवचन काः होता है। स्त्रीलिङ्ग एकवचन में सर्वनाम-शब्दों के लिए विशेष यः सौ (७।२।११०) तथा अन्य त्यदादि-सम्बन्धी सूत्रों की प्रक्रिया होती है।

प्रमुख सूत्र:-

1.त्यदादीनामः — ७।२।१०२: त्यदादि-सर्वनामों के सौ परे होने पर अकारादेश की सामान्य व्यवस्था करता है; इसके अपवादस्वरूप आगे विशेष सूत्र कार्य करते हैं।

2. किमः कः — ७।२।१०३: किम् के स्थान पर विभक्ति परे होने पर क आदेश होता है। अतः— किम् + सु ⟶ क + सु और आगे स्त्रीलिङ्ग-प्रक्रिया से— का।

3. यः सौ — ७।२।११०: स्त्रीलिङ्ग में सु परे होने पर त्यदादि-सर्वनाम के दकार/मकारादि अन्त्यादेश की विशेष प्रक्रिया होती है।

प्रमुख रूपसिद्धियाँ

प्रथमा एकवचन :- किम् + सु ⟶ क + सु ⟶ का

प्रथमा द्विवचन :- किम् + औ ⟶ के

प्रथमा बहुवचन :- किम् + जस् ⟶ का + अस् ⟶ काः

किम् — स्त्रीलिङ्ग रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभिः
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पञ्चमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु

विशेषः किम् के स्त्रीलिङ्ग रूपों को केवल 'किम्' के सामान्य हलन्त-रूपों से नहीं बनाया जा सकता; सर्वनाम-प्रक्रिया अनिवार्य है।

२. स्त्रीलिङ्ग — इदम्

इदम् स्त्रीलिङ्ग में इयम् आदि रूप देता है। यहाँ इसकी प्रक्रिया पुल्लिङ्ग अयम् और नपुंसकलिङ्ग इदम् से स्पष्टतः भिन्न है। विशेषतः यः सौ (७।२।११०) और इदोऽय् पुंसि (७।२।१११) के परस्पर सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। इदोऽय् पुंसि में पुंसि पद होने के कारण अय्-आदेश केवल पुल्लिङ्ग में होता है; स्त्रीलिङ्ग में इयम् रूप रहता है। यह भेद लघुसिद्धान्तकौमुदी की प्रक्रिया में विशेष महत्त्वपूर्ण है।

प्रथमा एकवचन — इयम्=इदम् + सु ⟶ इयम् ,अतः— इयम्

प्रथमा द्विवचन — इमे=इदम् + औ ⟶ इमे

प्रथमा बहुवचन — इमाः=इदम् + जस् ⟶ इमाः

इदम् — स्त्रीलिङ्ग रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्	इमे	इमाः
तृतीया	अनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः	आसु

तुलना ध्यान दें :- पुं० — अयम्, स्त्री० — इयम्,नपुं० — इदम्

यही इदोऽय् पुंसि सूत्र में पुंसि पद के प्रयोजन को समझने का उत्कृष्ट उदाहरण है।

३. नपुंसकलिङ्ग — इदम्

अब वही इदम् नपुंसकलिङ्ग में आता है। यहाँ इसकी रूपसिद्धि स्त्रीलिङ्ग एवं पुल्लिङ्ग दोनों से भिन्न है। विशेषतः स्वमोर्नपुंसकात् (७।१।२३) के कारण प्रथमा-द्वितीया एकवचन में सु/अम् का लुक् होता है। अतः यहाँ इदम् + सु ⟶ इदम् ही रहता है। इस कारण स्त्रीलिङ्ग का इयम् अथवा पुल्लिङ्ग का अयम् यहाँ नहीं बनता।

प्रमुख सूत्रः- स्वमोर्नपुंसकात् — ७।१।२३, नपुंसकलिङ्ग में सु और अम् के लुक् का विधान।

प्रथमा एकवचनः इदम् + सु ⟶ इदम्

द्वितीया एकवचनः इदम् + अम् ⟶ इदम्

प्रथमा द्विवचनः इमौ नहीं, बल्कि नपुंसक में विशेष रूप से— इमे

प्रथमा बहुवचनः इमानि

इदम् — नपुंसकलिङ्ग रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

४. नपुंसकलिङ्ग — अहन्

अहन् ('दिन') नकारान्त हलन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द है। यह हलन्तनपुंसकलिङ्ग प्रकरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। लघुसिद्धान्तकौमुदी में इसका मूल सूत्र है— **अहन् — ८।२।६८**

वृत्ति — अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते। अहोभ्याम्। वृत्त्यर्थः- 'अहन्' शब्द के पदान्त नकार के स्थान पर रुँ आदेश होता है। इस सूत्र की प्रक्रिया में पदसंज्ञा, रुत्व, तत्पश्चात् उत्व तथा गुण का क्रम आता है। उदाहरणतः—

अहन् + भ्याम् ⟶ अहरुँ + भ्याम् ⟶ अहउ + भ्याम् — हशि च (६।१।११४) ⟶ अहोभ्याम् — आद्गुणः (६।१।८७)।

१. अहः — प्रथमा एकवचनः अहन् + सु ⟶ सु का लुक् — स्वमोर्नपुंसकात् (७।१।२३) ⟶ अहन्⟶ अहर् — रोऽसुपि (८।२।६९) ⟶ अहः — खरवसानयोर्विसर्जनीयः (८।३।१५)। अतः प्रथमा एकवचन— अहः

२. अहोभ्याम् — तृतीया/चतुर्थी/पञ्चमी द्विवचनः अहन् + भ्याम् ⟶ अहरुँ + भ्याम् — अहन् (८।२।६८) ⟶ अहउ + भ्याम् — हशि च (६।१।११४) ⟶ अहोभ्याम् — आद्गुणः (६।१।८७)।

३. अहोभिः — तृतीया बहुवचनः अहन् + भिस् ⟶ अहरुँ + भिस् ⟶ अहउ + भिस् ⟶ अहोभिस् ⟶ अहोभिः

यहाँ अन्त में ससजुषो रुः (८।२।६६) तथा खरवसानयोर्विसर्जनीयः (८।३।१५) से विसर्ग-सिद्धि होती है।

४. अहानि — प्रथमा/द्वितीया बहुवचन: नपुंसक बहुवचन में— अहन् + जस् ⟶ अहानि

यहाँ नपुंसक बहुवचन की विशेष प्रक्रिया से अहानि रूप सिद्ध होता है।

{लघुसिद्धान्तकौमुदी के हलन्तनपुंसक प्रकरण में अह्नी, अहनी, अहानि रूपों का उल्लेख मिलता है।}

अहन्-शब्दरूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहः	अह्नी / अहनी	अहानि
द्वितीया	अहः	अह्नी / अहनी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अह्नि	अह्नोः	अहःसु
सम्बोधन	हे अहः	हे अह्नी / अहनी	हे अहानि

चारों शब्दों की रूपसिद्धि — तुलनात्मक दृष्टि

शब्द	लिङ्ग	मुख्य स्वरूप	विशेष सूत्र
किम्	स्त्री	मकारान्त सर्वनाम	किमः कः, त्यदादि-प्रक्रिया
इदम्	स्त्री	मकारान्त सर्वनाम	यः सौ, इदोऽय् पुंसि का स्त्रीलिङ्ग में अप्रवर्तन
इदम्	नपुंसक	मकारान्त सर्वनाम	स्वमोर्नपुंसकात्, नपुंसक-विशेष प्रक्रिया
अहन्	नपुंसक	नकारान्त	अहन्, रोऽसुपि, रुत्व-उत्व-गुण

इदम् के तीन रूपों को एक साथ समझना चाहिए—

पुल्लिङ्ग — अयम् स्त्रीलिङ्ग — इयम् नपुंसकलिङ्ग — इदम्

इसमें इदोऽय् पुंसि (७।२।१११) का पुंसि पद निर्णायक है; नपुंसकलिङ्ग में तो स्वमोर्नपुंसकात् के कारण सु का लुक् हो जाता है और अहन् की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है— अहन् + भ्याम् ⟶ अहरुँभ्याम् ⟶ अहउभ्याम् ⟶ अहोभ्याम्,जिसमें क्रमशः अहन् (८।२।६८) ⟶ हशि च (६।१।११४) ⟶ आद्गुणः (६।१।८७) कार्य करते हैं।

इस प्रकार इन चारों शब्दों में केवल रूप कण्ठस्थ करना पर्याप्त नहीं है; सर्वनाम-विशेष प्रक्रिया, लिङ्गभेद, पदसंज्ञा, लुक्, रुत्व, उत्व और गुण—इन सबके पारस्परिक सम्बन्ध को समझना ही लघुसिद्धान्तकौमुदी की दृष्टि से वास्तविक रूपसिद्धि है।

…… Dr. C. Kishor Shastri